कल्याण
वर्ष ३५]
[अङ्क ११

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण—१,३३,००० (एक लाख तैंतीस हजार)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०१८, नवम्बर १९६१

## विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १—मोहन मुरलीधर [ कविता ] ... | १२७७ |
| २—कल्याण ( 'शिव' ) ... ... | १२७८ |
| ३—परमात्मा, जीवात्मा और विश्व ( ब्र० जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारती-कृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी; अनु०—पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ) ... ... | १२७९ |
| ४—निरन्तर भगवच्चिन्तनकी महिमा ( श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका ) ... | १२८२ |
| ५—सागर-संतरण ( श्रीबालकृष्णजी बलदुवा ) | १२८५ |
| ६—श्रीरामका स्वभाव-सौन्दर्य ( श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज ) ... | १२८६ |
| ७—परिवार-नियोजनपर विनोबा ( श्रीविनोबा ) | १२९० |
| ८—जीवेम शरदः शतम् ( पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र का० व्या० सां० स्मृ० तीर्थ ) ... | १२९२ |
| ९—श्रीराधा-स्वरूप-गुण-महिमा ( श्रीराधाष्टमी-महोत्सव ( संवत् २०१८ ) पर हनुमानप्रसाद पोद्दारके भाषण ) ... | १२९४ |
| १०—एक साधकके उद्गार ... | १३०३ |
| ११—त्रिजटाने स्वप्न देखा ( श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, ज्योतिषाचार्य, साहित्यरत्न ) ... | १३०४ |
| १२—आशौच-निर्णय ( याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य ) | १३०७ |
| १३—सत्य-धर्मका वास्तविक स्वरूप ( पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा ) ... | १३११ |
| १४—मानवता [ कविता ] ( विद्यावाचस्पति डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्० ) ... ... | १३१३ |
| १५—नरक क्या ? [ कहानी ] ( श्री'चक्र' ) | १३१४ |
| १६—उद्धवके प्रति [ कविता ] ( पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' ) | १३१७ |
| १७—उत्तराखण्डकी यात्रा ( सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव ) ... | १३१८ |
| १८—श्रीरामचरितमानसकी एक अर्धाली ( श्रीनर्वदाप्रसादजी वर्मा ) ... | १३२२ |
| १९—वैज्ञानिक संजीवनी ( श्रीविश्वामित्रजी वर्मा ) ... ... | १३२४ |
| २०—आगामी अष्टग्रही योग ( हनुमानप्रसाद पोद्दार ) ... ... | १३३१ |
| २१—जहाँ हम सीखने जाते हैं ! ... | १३३६ |
| २२—सच्चा धनी और सच्चा दरिद्र कौन ? | १३३६ |
| २३—पढ़ो, समझो और करो ... | १३३७ |
| २४—नित्य परम आनन्द छा गया [ कविता ] | १३४० |


## चित्र-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १—मा लक्ष्मी ... ... | ( रेखाचित्र ) | ... मुखपृष्ठ |
| २—मोहन मुरलीधर ... ... | ( तिरंगा ) | ... १२७७ |


वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
( १५ शिलिंग )

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
( १० पेंस )

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

मोहन मुरलीधर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा ह्रदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ } गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०१८, नवम्बर १९६१ { संख्या ११ पूर्ण संख्या ४२०

## मोहन मुरलीधर

यमुना-तट-संनिकट कुंजमें मृदुल शिलापर मोहन श्याम ।
बैठे, रूप-छटा बिखराते, बजा रहे वंशी अभिराम ॥
सजी-सजायी चली जा रही गोपी ले करमें मटकी ।
जल भरने, सुन मुरली-ध्वनि, वह रही राहमें ही अटकी ॥
खिंची लौह-चुंबक-सी मुनि-मन-मोहन मुख-माधुर्य निहार ।
जो बैठी, विमुग्ध विस्मित-सी भूल भवन-तन-मन-संसार ॥
भरा अमित आमोद हृदयमें, उपजा मन मधुमय अभिलाष ।
बैठी रहूँ सदा, यों ही बस, मुग्ध हुई मोहनके पास ॥

# कल्याण

याद रक्खो—तुम मनुष्य हो, भगवान्‌ने तुमको भविष्यके अच्छे-बुरे सोचनेकी बुद्धि दी है, विवेक दिया है। भगवान्‌के दिये हुए उस विवेकके द्वारा अच्छे-बुरेका यथार्थ निर्णय करके अच्छेका ग्रहण और बुरेका त्याग करो। तभी तुम्हारे विवेकका सदुपयोग तथा संरक्षण होगा और विवेकके सदुपयोग तथा संरक्षणसे ही तुम्हारी मानवता सिद्ध होगी।

याद रक्खो—विवेकसे रहित मनुष्य, काम-क्रोध-लोभके वेगसे ग्रस्त होकर पशु या पिशाच बन जाता है। कहीं-कहीं तो वह पशु तथा पिशाचके स्तरसे भी आगे बढ़कर इतना मूढ़ और इतना भयंकर बन जाता है कि महान् राक्षस भी उसकी समता नहीं कर पाता, वह अपने तथा जगत्‌के अमङ्गलमें कारण महान् पापका समुद्र बन जाता है।

याद रक्खो—मनुष्यके पास जो बुद्धि है, वह जब विपरीत निर्णय देनेवाली तथा विपरीत मार्गपर चलाने-वाली बन जाती है, तो फिर उस मनुष्यके समस्त साधन उसके लिये भयानक पापके साधन बन जाते हैं। जिन ज्ञान-विज्ञानके आविष्कारोंसे, जिन भौतिक तथा दैविक सामग्रियोंसे वह समस्त जगत्‌की सेवा करके सबको सुख पहुँचाकर परिणाममें अपना परम कल्याण कर सकता है, अविवेकके कारण काम-क्रोध-लोभपरायण मनुष्य उन्हीं ज्ञान-विज्ञानके साधनोंसे, उन्हीं भौतिक तथा दैविक सामग्रियोंसे अपने मिथ्या लाभकी कल्पनासे अहंकारमें भरकर समस्त जगत्‌के विनाशकी बात सोचता है और फलतः स्वयं जीवनभर अशान्ति तथा चिन्ताकी आगमें जलता हुआ बुरी तरह मरता है और मरणोत्तर भीषण नरक-यन्त्रणा भोगने एवं बार-बार आसुरी योनियोंमें जन्म लेनेको बाध्य होता है। यह सब विवेक नष्ट होने-का ही कुपरिणाम है।

याद रक्खो—काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके दरवाजे हैं और आत्माका पतन करनेवाले हैं। विवेकमें शिथिलता आते ही इनकी प्रबलता बढ़ जाती है। फिर ये रहे-सहे विवेकको भी नष्ट कर देते हैं। तब मनुष्य बुद्धिका दुरुपयोग करके अपने सहज प्राप्त साधनोंके द्वारा अन्य सबके विनाशकी बात सोचता है और योजना बनाता है। हिंसावृत्तिवाले हिंसक पशु सिंह, बाघ, साँप आदि तो सामने आये हुए जीवकी ही हिंसा करते हैं, वे योजनापूर्वक हिंसा नहीं करते, वे योजना-पूर्वक विषय-संग्रहका प्रयास नहीं करते। पर मनुष्य योजना बनाना जानता है और उसके पास योजनाके अनुसार कार्य करनेके साधन भी हैं; ऐसा शक्तिमान् मनुष्य जब अपनी बुद्धि तथा प्राप्त साधनोंको अमङ्गलमें मङ्गल मानकर अमङ्गल-साधनमें ही लगा देता है, तब वह पशु तथा पिशाचसे भी कितना अधिक आगे बढ़ जाता है, अपने तथा जगत्‌के लिये कितना अहित-कर—कितना शत्रु होता है। इसपर गहराईसे विचार करो।

याद रक्खो—मानव-जीवन प्रभुकी प्राप्तिके लिये है, भोगोंके लिये नहीं। पाप-साधन करके अपना अमङ्गल करनेके लिये तो कदापि नहीं। इस बातको सोच-समझकर विवेकका संरक्षण और सदुपयोग करो तथा मानव-जन्मके असली लाभ परमात्मा या भगवत्प्रेमको प्राप्त करके जीवनको सफल बना लो।

'शिव'

# परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

( मूल अंग्रेजी लेखक--ब्र० जगद्गुरु अनन्त श्रीश्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी )

[ अनुवादक--पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि ]

[ गताङ्क पृष्ठ १२१७ से आगे ]

तो फिर क्या बुद्धि ही जीवात्मा है ? इस प्रश्नके उत्तरसे पहले एक उदाहरणद्वारा बुद्धि और मनके भेदको स्पष्ट करना चाहते हैं । कल्पना कीजिये कि मैं कुछ कागजातोंको प्रमाणित करानेके लिये सब-रजिस्ट्रारके पास जाता हूँ, जिसका काम ही कागजातोंको प्रमाणित करना है । मैं उसके पास जाता हूँ और ठीक तरहसे ठीक समय और ठीक स्थान-पर प्रमाणित करनेके लिये निर्धारित फीस भी दे देता हूँ और कागजातोंको उसके सामने रख देता हूँ । सब-रजिस्ट्रार उन कागजातोंसे संतुष्ट होकर उन्हें प्रमाणित भी कर देता है । वे मेरे कागजात कुछ ऐसी सम्पत्तिको बेचनेके विषयमें हैं, जो कि मेरी नहीं है और जिसे बेचनेका अधिकार भी मुझे नहीं है, तो भी सब-रजिस्ट्रार उन कागजातोंको प्रमाणित कर देता है और वह मेरे कामकी अच्छाई या बुराईसे सम्बन्धित नहीं होता । पर जब मुझसे कागजात लेनेवाला आदमी ( जिसने सम्पत्ति मुझसे खरीदी है ) अपनी खरीदी हुई सम्पत्तिपर अधिकार करने जाता है, तब उस सम्पत्तिका वास्तविक मालिक आपत्ति करता है । जब पहला मनुष्य उन प्रमाणित हुए कागजातोंको मालिकके सामने प्रस्तुत करता है, तब मालिक कहता है कि 'वह मनुष्य जिसने तुम्हें यह सम्पत्ति बेची है, एक ठग है और तुम एक मूर्ख हो । जाओ, अदालतमें दावा करके अपने इन कागजातोंको अदालतसे प्रमाणित कराओ ।' इसपर वह अदालतमें जाता है, पर तब इस मामलेमें निर्णय देनेवाले सब-रजिस्ट्रारद्वारा प्रमाणित हुए कागजात नहीं होते, अपितु जज होता है, जो कि मामलेकी सत्यता और असत्यता-पर विचार करके निर्णय देता है । जो भेद यहाँ सब-रजिस्ट्रार और न्यायाधीशमें है, वही भेद मन और बुद्धिमें है । मन हमारे शरीरका अङ्ग है और वह हर चीजको, जो हमारी इन्द्रियोंसे सम्बन्ध स्थापित करते हैं, प्रमाणित कर देता है और बादमें बुद्धि उस पदार्थके गुण-दोषका विवेचन करके अपना निर्णय देती है । उदाहरणके लिये, हम किसी शब्दको सुन भी लें और उसीके साथ उसका निर्णय भी कर दें, ये दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते । इसलिये हम पहले सुनते, चखते, बोलते, देखते और अन्यान्य काम करते हैं । वह अन्तरिन्द्रिय, जिसके द्वारा हम ये सब काम करते हैं, मन कहाता है । जिस प्रकार सब-रजिस्ट्रारका काम कागजातोंको प्रमाणित करना मात्र है, उसी प्रकार आँख, नाक आदि बाह्येन्द्रियोंसे प्राप्त होनेवाले बाह्यज्ञानका संग्रह करना मनका काम है । इस मनके पास कभी-कभी ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा ज्ञान पहुँचता है और कभी-कभी सीधा ही, जैसे कि स्वप्नमें जब सारी इन्द्रियाँ सो जाती हैं और मन स्वप्न देखता रहता है, जब हम उठते हैं तो कहते हैं कि हमने स्वप्न देखा । इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें भी मन काम करता है और बाह्य इन्द्रियोंकी सहायताके बिना ही अनेक प्रकारके ज्ञानोंका संग्रह करता रहता है । यद्यपि उस समय भी वे ज्ञान बाह्य प्रतीत होते हैं पर वे वास्तवमें अचेतन और चेतन मनकी अपनी उत्पत्ति हैं । जब मन जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें अनेक ज्ञानोंका संग्रह कर लेता है, तब बुद्धि उन ज्ञानोंकी सत्यता-असत्यता, अच्छाई-बुराईका निर्णय करती है ।

तब क्या यह बुद्धि ही आत्मा है ? नहीं; क्योंकि हम कभी-कभी कहते हैं कि 'इसकी सचाईको जाननेके लिये मैं अपनी सारी बुद्धि लगा दूँगा' यहाँपर भी हमारे इस कथनसे सिद्ध होता है कि बुद्धि भी हमारी सम्पत्ति ही है, सम्पत्तिकी अधिकारिणी नहीं । इसलिये बुद्धि भी आत्मा न होकर आत्माकी सेविका है ।

इस प्रकार विचार करते हुए गहराईमें जाकर हम उस तत्त्वपर जा पहुँचते हैं, जो इस सभी सम्पत्तिका वास्तविक मालिक है और जिसको हम 'मैं' या 'आत्मा'के नामसे पुकारते हैं । दूसरे शब्दोंमें आत्मा वह है, जिसका सम्बन्ध हम 'मैं' और 'मेरा'के रूपमें संसारके सभी पदार्थोंसे जोड़ते हैं और जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सभी तत्त्वोंका स्वामी है । पर खेद है कि यह स्वामी होते हुए भी कभी-कभी इन्द्रियोंका दास बन जाता है । अस्तु ! इस सभी सम्पत्तिका वास्तविक स्वामी आत्मा ही है ।

## आत्माका लक्षण और स्वरूप

इस प्रकार आत्माकी सत्ता सिद्ध करनेके बाद अब हम उसके लक्षण और स्वरूप अर्थात् उसके तात्त्विक गुणों ( Essential Qualities ) का विचार करते हैं । यदि हम उसके गुणोंकी खोज कर लें तो 'हम कहाँसे आये हैं और अन्तमें कहाँ जायँगे' इस प्रश्नका उत्तर हमें मिल जायगा । इस मंजिलपर पहुँचनेके कई मार्ग हैं, पर यहाँ हम उन्हीं विचार और समाधिके मार्गका विवेचन करेंगे, जिसका अनुभव हम कर चुके हैं । ये अनुभव, मुझे आशा है कि इस मार्गपर चलनेवाले जिज्ञासुओंके लिये उनके मार्गको प्रशस्त करेंगे ।

प्रारम्भ करनेके लिये हम सबसे पहले लक्षणके लक्षण ( Definition of Definition ) पर विचार करेंगे, जिससे कि जिज्ञासु लक्षण, उपलक्षण और उपाधिको एक या पर्यायवाची शब्द समझनेकी महान् भ्रान्तिसे बच जायँ ।

लक्षण पदार्थका उससे पृथक् न होनेवाला स्वाभाविक ( Inherent ) गुण है और उपलक्षण वह गुण है, जो स्वाभाविक न होकर बाह्य वातावरणके प्रभावके कारण उसमें आ जाता है तथा थोड़े समयके लिये उस पदार्थके स्वाभाविक गुण-सा प्रतीत होने लगता है । उदाहरणके लिये मैं अपने मकानमें हूँ और अपने एक मित्रको, जो उसी गलीमें रहता है, एक पुस्तक देनेके लिये अपने नौकरको भेजता हूँ । यदि वह नौकर मित्रका घर नहीं जानता और मुझसे उसके बारेमें जानना चाहता है तो उसे मैं अपने मकानकी छतपर ले जाता हूँ और उसी गलीमें दो-तीन घरोंके बाद एक घरकी ओर इशारा करके कहता हूँ 'वह देखो, जिस घरपर कौवा बैठा है, और जिस घरके सामने तीन आदमी बात कर रहे हैं, वही घर है, जाओ' और नौकर यह कहकर कि 'जी हाँ, मैं समझ गया' पुस्तक लेकर उस घरकी ओर चल देता है । पर इसी बीच ऐसा होता है कि उस घरपरसे कौवा भी उड़ जाता है और आदमी भी चले जाते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं होता कि उनके साथ घर भी गायब हो गया । वह क्षणिक वर्णन तो घरकी पहिचान करानेके लिये था । पर उस घरकी पहिचान क्षणिक नहीं होती, अपितु स्थायी हो जाती है । फिर कभी नौकरको दुबारा मित्रके पास भेजते समय उस घरकी पहिचान करानेकी जरूरत नहीं पड़ती । पर मैंने जो कुछ नौकरको बताया, वह उस घरका लक्षण नहीं था । वह तो आकस्मिक था कि कौवा और आदमी वहाँ थे और वे मेरे लिये उस घरकी पहिचान करानेके साधन बने । मैंने उस आकस्मिकताका लाभ उठाया । यह आकस्मिक पक्ष उस घरका उपलक्षण था ( जो उतने समयके लिये लक्षण-सा प्रतीत हो रहा था ) ।

ज्ञान करानेका तीसरा साधन है—उपाधि । यह न थोड़े समयके लिये सत्य प्रतीत होता है, न बहुत समयतकके लिये । जैसे कि एक बच्चेसे, जो चन्द्रमा जानना चाहता है, मैं कहता हूँ कि 'देखो बच्चे ! वहाँ जो पेड़ है उसकी दो डालियोंके बीचमें जो एक सफेद-सफेद गोल-सी चीज चमक रही है वही चन्द्रमा है ।' बच्चा मेरे कहनेको समझ लेता है और चन्द्रमाको पहिचान लेता है । मैं वर्णन करते समय भी यह अच्छी तरह जानता हूँ कि चन्द्रमा वास्तवमें उन दो डालियोंके बीचमें न होकर उनसे हजारों मील दूर है । यह मेरा कथन यद्यपि उस समय भी गलत है, पर बच्चेके लिये सच मालूम पड़ता है और यह प्रतीत होनेवाली सचाई उस बच्चेको चन्द्रमाका ज्ञान करा देती है । अगले दिन बच्चा चन्द्रमाको, वह चाहे कहीं भी हो, पहिचान लेता है ।

इस प्रकार ज्ञानके साधन-लक्षणके तीन प्रकार हैं—( १ ) लक्षण ( जो स्वाभाविक और स्थायीरूपसे सत्य होता है ), ( २ ) उपलक्षण ( जो आकस्मिक एवं अस्थायीरूपसे सत्य होता है ), ( ३ ) उपाधि ( जो आकस्मिक होता हुआ भी नितान्त असत्य होता है ) । इन तीनों ही तरीकोंसे हम आत्मा या अन्य पदार्थका सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, पर आत्माका ज्ञान प्राप्त हो जानेके बाद हमें उपलक्षण और उपाधिको छोड़कर उसके सत्यस्वरूप या सत्य लक्षणको अपनाना पड़ेगा ।

## आत्मविषयक ज्ञान कैसे हो ?

आत्माके वास्तविक लक्षण या गुणोंको जाननेके भी कई तरीके हैं । पर सबसे अधिक सरल दो ही तरीके हैं—( १ ) विश्लेषणात्मक ( Analytical ) और ( २ ) संश्लेषणात्मक ( Synthetical ) । हम इन दोनोंपर विचार करेंगे—

### विश्लेषणात्मक प्रकार

विश्लेषणात्मक तरीका वह है, कि जिससे हम धीरे-धीरे उपाधि और उपलक्षणोंको छोड़ते हुए एक पदार्थके सच्चे लक्षणपर पहुँचते हैं । उदाहरणके लिये—यद्यपि हमने पानीके उष्णत्व और शीतत्व दोनोंका ही अनुभव किया है, पर शास्त्र हमें यही बताते हैं कि पानीका स्वाभाविक गुण शीतत्व ही है । क्यों ? क्योंकि पानीके उष्णत्वका अनुभव करते हुए भी हम

यह जानते हैं कि उष्णत्व पानीका अपना गुण नहीं है, अपितु आगके या सूर्यकी किरणोंके कारण यह पानी गरम हो गया है। और जब एक ऐसे स्थानपर जाते हैं, जैसा उत्तर गुजरातके वीरमगाँव, और वहाँ हम गरम पानीका एक तालाब देखते हैं, तो हम उसी समय पूछते हैं कि 'यह पानी गरम क्यों है ?' यह हमारा 'क्यों' शब्द ही इस बातको प्रमाणित करनेके लिये पर्याप्त है कि उष्णत्व पानीका स्वाभाविक गुण नहीं है। हमें उसका कारण बताया जाता है कि नीचे गन्धकके स्रोत हैं, जो पानीको गरम बनाये रखते हैं। यह कारणका बताना ही इस बातका निदर्शक है कि शीतत्व ही पानीका स्वाभाविक गुण है। बाह्य उपकरणोंसे उसका ठंडापन नष्ट हो जाता है और उसमें उष्णत्व आ जाता है। इसमें दूसरा प्रमाण भी है कि यदि गरम पानीको आगपरसे उतारकर नीचे रख दिया जाय तो वह धीरे-धीरे ठंडा होता चला जायगा और अन्तमें बिल्कुल ही ठंडा हो जायगा। इससे ज्ञात होता है कि पानीको गरम होनेके लिये किसी बाह्य कारण या साधनकी आवश्यकता होती है, पर उसके ठंडे होनेके लिये किसी भी बाह्य कारणकी जरूरत नहीं होती। इसलिये पानीका उष्णत्व, उपर्युक्त उदाहरणमें कौवेके समान, उपलक्षणमात्र है। इसी प्रकार यदि किसी ताँबेके बर्तनको खटाईसे चमकाकर ऐसे स्थानपर रख दिया जाय, जहाँपर धूल आदि कुछ भी न पहुँच सके, तो भी कुछ समयके बाद वह अपने आप काला और गंदा हो जायगा। क्यों ? क्योंकि कालापन उस बर्तनका स्वाभाविक गुण है। ये सभी उदाहरण यह बताते हैं कि किसी पदार्थके स्वाभाविक गुणमें 'क्यों' के लिये कोई स्थान नहीं रहता। यदि किसी पदार्थका स्वाभाविक गुण किसी शक्तिशाली बाह्य साधनसे दबा भी दिया जाय तो कुछ समय बाद उसका स्वाभाविक गुण स्वयं बाहर प्रकट हो जायगा। इस विचार-सरणीके द्वारा हम आत्माके स्वरूपका ज्ञान कर सकते हैं और वेदान्तके शुद्ध सत्यकी पुनः स्थापना कर सकते हैं।

## संश्लेषणात्मक प्रकार

इस प्रकारको हम उद्देश्यात्मक प्रकार ( Teleological Method ) भी कह सकते हैं। यह तरीका बहुत सरल है, इसके द्वारा साधारण आदमी भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसके द्वारा भी हम आत्माके स्वरूपका परिज्ञान कर 'यह कहाँसे आयी और इसका उद्देश्य क्या है ?' इस प्रश्नको हल कर सकते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद्में इस मार्गका वर्णन है। बालक भृगु ( जो बादमें महर्षि भृगुके नामसे प्रसिद्ध हुए ) अपने पिता वरुणके पास जाकर यही प्रश्न पूछते हैं और वरुण इस प्रश्नका उत्तर लंबी-चौड़ी व्याख्यामें न देकर संक्षेपमें देते हैं। उसी संक्षिप्त उत्तरके आधारपर आगे खोज करनेकी प्रेरणा भृगुको देते हैं। वह संक्षिप्त उत्तर निम्न था—

'जिससे इस सारे विश्वकी उत्पत्ति हुई है, जो इस विश्वका पोषण करता है और अन्तमें यह विश्व जिसमें विलीन हो जाता है, वह कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता एक ही है अर्थात् ब्रह्म।'

उपर्युक्त विषयको स्पष्ट करनेके लिये अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे कि एक बीज भूमिसे ही पैदा होता है, भूमिसे ही पोषण प्राप्त करता है और अन्तमें भूमिमें ही मिल जाता है।

इसी विषयको मछलीके उदाहरणसे भी स्पष्ट किया जा सकता है। साधारणतया सभी मनुष्य यह जानते हैं कि एक मछलीको पोषक तत्त्व पानीसे ही प्राप्त होता है, पर कल्पना कीजिये कि किसी मनुष्यको इस तथ्यका पता नहीं है और वह अचानक एक ऐसी मछलीको देखता है जो एक नदीके किनारेपर पड़ी तड़प रही है, फिर वह यह सोचकर कि एक कष्ट अनुभव करनेवाले मनुष्यके कष्ट जिन साधनोंसे दूर हो जाते हैं, उन्हीं साधनोंसे इसके भी कष्ट दूर हो जायँगे, उसे अपने घरपर लाता है, बिस्तरपर सुलाता है, पर देखता है कि उस मछलीका कष्ट दूर नहीं हुआ है तब वह फिर नदीपर जाता है तथा गुस्सेमें आकर उस मछलीको नदीमें फेंक देता है। पर वह मनुष्य आश्चर्यसे देखता है कि वही मछली, जो मुलायम बिस्तरेपर भी पड़ी तड़पती रही, अब पानीमें खुश होकर तैर रही है। इन सब प्रयोगोंसे वह किस निष्कर्षपर पहुँचेगा ? इसीपर कि पानी ही मछलीका पोषक तत्त्व है। यह पानीसे ही उत्पन्न होती है और पानीसे ही पुष्ट होती है।

इस उदाहरणसे हम यह अनुमान आसानीसे लगा सकते हैं कि जिसके बिना हम सुखी नहीं रह सकते, वही हमारा स्वाभाविक पोषकतत्त्व है। यही उद्देश्यात्मक प्रकार ( Teleological Method ) है। इसके द्वारा भी हम अद्वैत-सिद्धान्तकी स्थापना कर सकते हैं। अब हम आगे इन तरीकोंके आधारपर आत्माके स्वरूपके परिज्ञानका प्रयत्न करेंगे।

( क्रमशः )

# निरन्तर भगवच्चिन्तनकी महिमा

( लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

भगवान्के साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण किसी भी स्वरूपके निरन्तर स्मरणके समान कोई भी साधन नहीं है। यह साधन बहुत ही सुगम है। इस साधनसे भगवान्की प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है। यदि इस मनुष्य-जन्ममें भगवत्प्राप्ति नहीं हुई तो बड़ी भारी हानि है, महान् भयकी बात है। श्रुति कहती है—

**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।**
( केन० २।५ )

'यदि इस मनुष्य-जीवनमें परमात्माको जान लिया तब तो ठीक है और यदि उसे इस जन्ममें नहीं जाना तब बड़ी भारी हानि है।'

क्योंकि मनुष्य भगवान्के सिवा किसी भी प्राणी या पदार्थका चिन्तन करता हुआ मरता है तो उसकी दुर्गति होती है। मरनेके समय जिस मनुष्य, पितर, देवता, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदिका चिन्तन करता हुआ मरता है वह उसीको प्राप्त होता है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

**यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।**
**तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥**
( ८।६ )

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।'

हमें यह पता नहीं कि हमारी मृत्यु कब होगी। यदि अचानक मृत्यु हो गयी और मरणकालमें भगवान्की स्मृति नहीं रही तो बहुत ही खतरेकी बात है। इसलिये हमलोगोंको हर समय भगवान्को याद रखते हुए ही सारे काम करने चाहिये। भगवान्ने गीतामें अर्जुनसे कहा है—

**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।**
**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥**
( ८।७ )

'इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा।'

यदि हम हर समय भगवान्का स्मरण करते रहेंगे तो हम अवश्य ही भगवान्को प्राप्त हो जायँगे। अतएव एक क्षण भी भगवान्को नहीं भूलना चाहिये।

शरीर और इन्द्रियोंसे आप जो कुछ कर रहे हैं, वही करते रहिये पर केवल मनसे भगवान्के सिवा अन्य किसीका भी चिन्तन न कीजिये। यों तो मनुष्य स्वाभाविक ही दो काम बराबर करता रहता है, जैसे शौच-स्नान, खान-पान आदिकी क्रिया इन्द्रियोंसे होती रहती है और मन दूसरा ही व्यर्थ चिन्तन करता रहता है; किंतु हमारी प्रार्थना यह है कि आप जैसे शौच-स्नानादिकी क्रिया तथा जीविकाके लिये व्यापार आदिकी क्रिया शरीर एवं वाणी आदि इन्द्रियोंसे करते आये हैं, चाहे वही करते रहिये; किंतु भगवान्को कभी मत भूलिये। सांसारिक कार्यमें कहीं कमी भी आ जाय या दोष भी आ जाय तो उसका सुधार भगवान्की निरन्तर स्मृति-के प्रभावसे हो सकता है; क्योंकि कैसा भी पापी क्यों न हो भगवान्की अनन्यभक्तिसे उसका सुधार होकर उद्धार हो जाता है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥**
**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥**
( गीता ९।३०-३१ )

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरे भक्तका विनाश नहीं होता।'

इससे यह समझना चाहिये कि दोषोंका नाश तो भगवान्‌की अनन्य भक्तिके प्रभावसे अनायास ही हो सकता है, किंतु अनन्य भक्तिमें कमी रह जायगी तो बड़ी भारी हानि है; क्योंकि उसकी पूर्ति अपने-आप सम्भव नहीं।

अतएव जिस कार्यके लिये हमें यह मनुष्य-शरीर मिला है, उसी काममें इसको लगाना चाहिये। ईश्वरने हमको विवेक, बुद्धि और विचार दिया है, उसको सार्थक करना चाहिये एवं इस मोहनिद्रासे सचेत होकर महापुरुषोंके पास जाना चाहिये तथा उनसे उस जानने योग्य परमात्माके तत्त्वको जानकर अपना कल्याण करना चाहिये। कठोपनिषद्‌में बताया गया है—

**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

( १।३।१४ )

'उठो, जागो ( सावधान हो जाओ ) और श्रेष्ठ पुरुषोंके पास जाकर उनसे जानने योग्य परमात्मतत्त्वको समझो।'

इसलिये मनुष्यशरीरके रहते-रहते ही परमात्माकी प्राप्तिरूप कार्यको सिद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्‌ने कहा है—

**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।**

( गीता ९।३३ का उत्तरार्ध )

'अर्जुन! तू इस सुखरहित और क्षणभङ्गुर दुर्लभ मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही स्मरण कर।'

यदि भगवान्‌के निरन्तर चिन्तनका प्रयत्न करते हुए देहपात भी हो जाय तो भी कल्याण ही है, किंतु भगवच्चिन्तनके बिना देहपात होनेके बाद पश्चात्ताप करनेसे कोई काम नहीं सिद्ध होता।

अतः शरीरके रहते-रहते ही अपने कार्यकी सिद्धि कर लेनी चाहिये। नहीं तो, आग लगनेके बाद कुआँ खोदनेसे कोई कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। वैसे ही पीछे यहाँ भी कुछ नहीं होगा।

श्रीभर्तृहरिजीने कहा है—

**यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा**
**यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।**
**आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्**
**प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥**

( वैराग्यशतक ८६ )

'जबतक यह शरीररूपी घर स्वस्थ है, जबतक वृद्धावस्था दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयुका भी क्षय नहीं हुआ है, तभीतक समझदार मनुष्यको अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये, नहीं तो घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदनेका प्रयत्न करनेसे क्या होगा?'

भोजराज कहते हैं—

**चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः**
**सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।**
**गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः**
**सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति॥**

'मनोमोहिनी स्त्रियाँ हैं, मित्र भी अनुकूल हैं, बन्धुजन भी बड़े सुयोग्य हैं, सेवक भी प्रेमभरी बोली बोलनेवाले हैं, कितने ही हाथी चिग्घाड़ रहे हैं और तेज घोड़े हिनहिना रहे हैं; किंतु आँखोंके मुँद जानेपर कोई अपना नहीं रहता।' श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

**झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जुरे, मद-अंबु चुवाते।**
**तीखे तुरंग मनोगति चंचल पौनके गौनहु तें बढ़ि जाते॥**

भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जो पै जानकीनाथके रंग न राते॥
( कविता० उत्तर० ४४ )

मन बड़ा ही चञ्चल, प्रमादी और मूर्ख भी है। जैसे बालक विद्याका अभ्यास छोड़कर खेल-कूदमें चला जाता है; क्योंकि उसे खेल-कूदमें ही रस आता है; किंतु जब वह बड़ा होता है और उसमें समझ आ जाती है तब वह पश्चात्ताप करता है कि बालकपनमें मैंने खेल-कूदमें समय बिता दिया, विद्याका अभ्यास नहीं किया, यह मेरी बड़ी मूर्खता हुई। किंतु उस पश्चात्तापसे किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार जो मनुष्य निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन न करके विषयभोगोंमें, व्यर्थ कार्योंमें और पाप-कार्योंमें रस लेता है, उसको भी घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥
( राम० उत्तर० ४३ )

श्रीसुन्दरदासजी भी कहते हैं—

तू कछु और बिचारत है नर तेरो बिचार धर्‌यौ ही रहैगौ।
कोटि उपाय करै धनकै हित भाग लिख्यौ तितनो ही लहैगौ॥
भोर कि साँझ घरी पल माँझ सु काल अचानक आइ गहैगौ।
राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुंदर यों पछिताइ कहैगौ॥
( सुन्दर-विलास अंग ३ पद ७ )

हमलोग थोड़ा विचार करके देखेंगे तो हमलोगोंका मनसे भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभावका चिन्तन करना तथा शास्त्र और सत्संगके द्वारा भक्ति-ज्ञान, वैराग्य-सदाचार आदि अध्यात्मविषयका पठन, श्रवण और मनन करना आदि सात्त्विक कार्यरूप परमार्थमें बहुत ही कम समय बीतता हुआ मिलेगा; किंतु हमारे समयका कुछ हिस्सा तो स्वाद-शौक, ऐश-आराम, भोग-विलास, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा आदि राजस कार्यरूप स्वार्थमें बीतता हुआ मिलेगा एवं अधिकांश समय मूर्खताके कारण निद्रा, आलस्य, प्रमाद और पाप आदि तामस कर्मरूप अनर्थमें ही बीतता मिलेगा। इसलिये भगवान्‌ने जो हमको बुद्धि, विवेक और ज्ञान दिया है उसके द्वारा मनको समझाना चाहिये एवं उसे राजस-तामस रूप स्वार्थ और अनर्थके कार्योंसे हटाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्कामभावसे निरन्तर परमात्माके चिन्तनरूप परमार्थमें लगाना चाहिये। इस प्रकार मनको परमार्थमें लगाना ही उसका सदुपयोग है और इसके विपरीत लगाना ही उसका दुरुपयोग है। मनका स्वभाव बहुत ही गिरा हुआ है, उसका सुधार भगवान्‌का आश्रय लेकर अतिशय तत्परतासे प्रयत्न करनेपर ही भगवान्‌की कृपासे हो सकता है।

इस समय हमको सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त है। अध्यात्मविषयकी उन्नतिके लिये यह भारतवर्ष उत्तम देश है। तथा जिसमें अल्पकालके साधनसे ही शीघ्र कार्यकी सिद्धि हो जाती है—ऐसा यह उत्तम कलिकाल है। ऐसे उत्तम देश-कालमें भगवान्‌ने कृपा करके हमको मनुष्य-शरीर दे दिया और भजन-ध्यान करनेके लिये मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ दे दीं। इस समय अध्यात्म-विषयक पुस्तकें भी कम मूल्यमें प्राप्त हो जाती हैं। उत्तम पुरुषोंका सङ्ग भी प्राप्त हो सकता है। ये सब संयोग पाकर भी यदि हम परमात्माकी प्राप्तिसे वञ्चित रहें तो हमारे लिये बहुत ही लज्जा, दुःख और शोककी बात है—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥
( राम० उत्तर० ४४ )

अतः हमलोगोंको विचार करना चाहिये और पतनकारक काम, क्रोध, लोभ, भय, दर्प, ईर्ष्या, द्वेष, ममता, आसक्ति और अज्ञानके वशमें होकर एक क्षण भी परम सुहृद् भगवान्‌को

नहीं भूलना चाहिये। वैराग्ययुक्त भावसे त्रिलोकीके ऐश्वर्यको ठुकराकर केवल एक भगवान्का ही प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। हमारे लिये इसके समान और कोई भी परम उपयोगी कार्य नहीं है। तब हम दूसरे काममें एक क्षण भी अपने चित्तको क्यों लगायें? इसलिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते हर समय भगवान्को याद रखनेकी प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये तथा जप-ध्यान, संध्या-गायत्री, पूजा-पाठ, स्तुति-प्रार्थना करनेके समय तो उनके अर्थ और भावको अच्छी तरह समझकर श्रद्धा, विश्वास और प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे गुण और प्रभावयुक्त भगवान्के स्वरूपका मनसे निरन्तर चिन्तन विशेषतासे होना ही चाहिये। रात्रिमें सोनेके समय भी विशेषतासे भगवान्को याद करते हुए ही सोना चाहिये। इससे हमारा रात्रिका शयनकाल भी साधन-कालके रूपमें परिणत हो सकता है; क्योंकि मनुष्य १८ घंटा जिस कार्यका अभ्यास करता है, रात्रिमें ६ घंटे स्वप्न-सुषुप्तिके भी प्रायः वैसे ही बीतते हैं। अतः लाख काम छोड़कर यही काम करें कि—भगवान्को कभी न भूलें। भगवान्की निरन्तर स्मृतिके प्रभावसे दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि दोषोंका और सम्पूर्ण दुःखोंका सर्वथा विनाश होकर भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्ति शीघ्र ही हो सकती है। श्रीभागवतकार कहते हैं—

**अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः**
**क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।**
**सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं**
**ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥**
(१२।१२।५४)

'भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी अविचल स्मृति सारे पाप-ताप और अमङ्गलोंको नष्ट कर देती है और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तः-करणकी शुद्धि, भगवान्की भक्ति एवं विज्ञान-वैराग्यसे युक्त भगवान्के स्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है।'

**तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।**
**श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥**
(२।२।३६)

'इसलिये परीक्षित्! सभी मनुष्योंको चाहिये कि वे सब समय, सब परिस्थितियोंमें सब प्रकारसे भगवान् श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें।'

# सागर-संतरण

**आस्थामें जो बाल-सी दरार पड़ती कभी-कभी दिखायी दे जाती है,**
**जब वह भी बंद हो जायगी,**
**तभी—**
**सोचता हूँ,**
**उच्छ्वसित सागरमें तैरना बंद होगा।**
**तब भी—**

**सागर-संतरण होता रहेगा, पर चलते चरण-तल स्पर्श करेंगे, प्रत्येक पगपर, नारायण-नाभि-उद्भूत अरुणाभ अम्बुजकी मधुर-मधुरतम, स्निग्ध-स्निग्धतम पंखुड़ियाँ।**

**अछोर अम्बुधिके सतत-कर्दम-कर्कट उबालते, उभाड़ते, गर्जन-तर्जन-भयद भँवर-चक्र तो उछल-उछलकर भी उन पंखुड़ियोंको नहीं छू पाते; कँवल-नालके चारों ओर ही चक्कर खाते रहते हैं, सिर पटकते रहते हैं।**

—बालकृष्ण बलदुवा

# श्रीरामका स्वभाव-सौन्दर्य

( लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज )

तीर्थपति समुद्रके तटपर विराजमान भगवान् श्रीरामजीकी शरणमें श्रीविभीषणजी आये, वे सर्वलोकशरण्य श्रीरामजीके स्वभावके ज्ञाता थे; इससे महान् विश्वासपूर्वक शरणागति करके कृतार्थ हुए। परमार्थ पक्षमें श्रीविभीषणजी जीवोंके प्रतीक हैं; यथा—

'जीव भवदंघ्रिसेवक बिभीषन
बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।'

( विनयपत्रिका ५८ )

विभीषणकी शरणागतिपर वहाँके उपस्थित अन्य पार्षदों एवं बहुत कालसे बिछुड़े हुए भविष्यके जीवोंके प्रति स्वामी श्रीरामजीके हृदयमें वात्सल्य उमड़ आया, तब आपने स्वयं अपने स्वभावके सौष्ठवका वर्णन किया है, कि जिससे सभी लोग उसे जानकर विश्वासपूर्वक शरण होकर कृतार्थ हो जायँ; यथा—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

( रामचरितमानस सुं० ४७ )

'जौं नर होइ चराचर द्रोही।······'—यहाँ श्रीरामजीने अपने स्वभावज्ञाताओंकी साक्षी देकर कहा है कि चराचरमात्रके द्रोहका पापी भी, यदि वह अपने पापोंसे भयभीत होकर मेरी शरण आ जाय। 'तकि मोहीं' अर्थात् विश्वासपूर्वक मुझमें ही अनन्य होकर आ जाय। साथ ही शरण होनेकी प्रक्रिया भी कहते हैं—

'तजि मद मोह········'—इन मद आदि दोषोंके रहते हुए शरणागति होती ही नहीं; 'मद' रहते हुए कार्पण्यदैन्य नहीं होगा, जो शरणागतिका छठा अंग है। 'मोह' रहते हुए विश्वासपूर्वक शरणागति नहीं हो सकती। 'कपट छल' प्रभुको भाते ही नहीं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

( रामचरितमानस सुं० ४३ )

किष्किन्धाकाण्डमें श्रीहनुमान्जी जबतक कपटरूपसे विप्रवेषमें थे, तबतक प्रभुने चरणोंपर पड़े हुए भी उन्हें नहीं उठाया, जब अत्यन्त प्रेममें कपट छूट गया, वे अपने वानर रूपमें हो गये, तब उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। 'छल नाना'—मन, वचन, कर्मके—

करम बचन मन छाँड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किये कोटि उपचार॥

( रामचरितमानस अयो० १०७ )

'करउँ सद्य तेहि········' यथा—

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥**
**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥**

( गीता ९। ३०-३१ )

'यदि कोई अत्यन्त दुराचारी भी अनन्य भावसे मुझे भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह ठीक-ठीक निश्चयवाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तुम प्रतिज्ञा करो कि मेरे भक्त ( श्रीकृष्णके भक्त ) का नाश नहीं होता।'

इन वचनोंसे भगवान्ने अपने शरण्यगुणविशिष्ट स्वभावको बतलाया और शरणागतिकी कुछ प्रक्रिया एवं उससे परम लाभका लक्ष्य कराया है।

शरणागति महाविश्वासपूर्वक ही होती है; यथा—

**अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।**
**तदेकोपायता याच्ञा प्रपत्तिः शरणागतिः॥**

**( भरताचार्य )**

संसारसे डरे हुए जीवकी—'अन्य साधनोंसे अपना अभीष्ट सिद्ध होता न देखकर एक श्रीरामजी ( आप ) ही मेरे उपाय हैं, इस प्रकार महाविश्वासपूर्वक उनसे याचना करना—शरणागति एवं प्रपत्ति है।'

इस प्रकार महाविश्वास दृढ़ करनेके लिये शरणवत्सल

---

१. उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

( रामचरितमानस सुं० ३३ )

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

( रामचरितमानस उत्तर० १२३ )

प्रभु अपने सहज स्वभावका कुछ विशेष रहस्य भी बतलाते हैं; यथा—

सत्य कहउँ मेरो सहज सुभाउ ।
सुनहु सखा कपिपति, लंकापति, तुम्ह सन कौन दुराउ ॥१॥
सब बिधि हीन, दीन, अति जड़मति, जाको कतहुँ न ठाँउ ।
आये सरन भजौं, न तजौं तेहि, यह जानत रिषिराउ ॥२॥
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित, नाहिंन और उपाउ ।
तिन्हहिं लागि धरि देह करउँ सब, डरउँ न सुजस नसाउ ॥३॥
पुनिपुनि भुजा उठाइ कहत हौं, सकल सभा पतिआउ ।
नहिं कोउ प्रिय मोहिं दास सम, कपट प्रीति बहि जाउ ॥४॥
सुनि रघुपतिके बचन बिभीषन प्रेम मगन, मन चाउ ।
तुलसिदास तजि आस-त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥५॥
( गीतावली सुं० ५५ )

( समुद्र-तटपर तुरंत शरणमें आये हुए श्रीविभीषणके समक्ष सभी सखाओंके प्रति श्रीरामजी कहने लगे—) हे सखा श्रीसुग्रीवजी और श्रीविभीषणजी ! सुनिये, मैं अपना 'सत्य सहज स्वभाव' कहता हूँ, आपलोगोंसे क्या छिपाना है ? जो सब प्रकारसे गया-बीता हो, अत्यन्त जडबुद्धि हो, यहाँतक कि जिसको कहीं भी ठिकाना न हो; शरण आनेपर मैं उसे भी ( उसके भावानुसार ) अङ्गीकार करता हूँ, उसका त्याग नहीं करता, इसे ऋषिराज श्रीनारदजी एवं श्रीवाल्मीकि आदि जानते हैं ॥ १-२ ॥

जिनके चित्तमें मैं ही सब प्रकारसे हितकारी हूँ और दूसरा कुछ उपाय नहीं है; उनके लिये देह धारण करके मैं सब कुछ करता हूँ, 'इसमें मेरा सुयश नष्ट हो जायगा' इस बातसे नहीं डरता ॥ ३ ॥ मैं बार-बार भुजा उठाकर ( प्रतिज्ञापूर्वक ) कहता हूँ, सारी सभा इसका विश्वास करे; मुझे अपने दासके समान और कोई प्यारा नहीं है, परंतु जिस दासकी मुझमें कपट प्रीति है, वह ( भवसागरमें ) बह जाय ( तो इसकी मुझे चिन्ता नहीं रहती ) ॥ ४ ॥ इस प्रकारके श्रीरामजीके वचन सुनकर श्रीविभीषणजी प्रेममें निमग्न हो गये, उनके मनमें बड़ा चाव बढ़ा । श्रीतुलसीदास-जी कहते हैं कि सब प्रकारकी आशा और भय छोड़कर ऐसे प्रभुका गुणगान कीजिये ॥ ५ ॥

विशेष—'सत्य कहउँ मेरो सहज सुभाउ' जन्मके साथसे जो स्वभाव रहता है, वह 'सहज' स्वभाव है । श्रीरामजीका स्वरूप नित्य है । अतएव उनका यह स्वभाव भी नित्य एवं सत्य है, इसमें कभी हेर-फेर नहीं होता ।

'सुनहु सखा…' अन्तरंग सखा होनेसे ये दोनों इस रहस्यके अधिकारी हैं—

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता । हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता ।
ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावउँ । परम रहस्य मनोहर गावउँ ॥
सुनहु राम कर सहज सुभाऊ ।' ( रामचरितमानस उत्तर० ७३ )

**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।**
**इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥**
( गीता १८ । ६४ )

'सब बिधि हीन दीन…' इसमें 'अति' पद दीप-देहली है । जिसने अन्य सभी विधियोंको अपने अभीष्ट परमात्म-प्राप्तिके योग्य न समझकर त्याग दिया है और स्वामीकी प्राप्तिमें अपनेको उनके समक्ष अत्यन्त अल्प जानकर अत्यन्त दीनता धारण कर रक्खी है, जो अपनेको अति जडमति मानता है; क्योंकि बुद्धिमें सदसद्विवेक तो परमात्माके प्रकाशसे होता है; यथा—'**ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।**' ( गीता १० । ३८ ) और जिसने प्राकृत सभी लोकोंको अपने स्वरूपके अनुपयुक्त जानकर त्याग दिया है, इससे जिसे कहीं भी ठाउँ ( स्थान ) नहीं है । वह उत्तम अधिकारी यदि मेरी शरणमें आता है तो मैं उसको तदनुसार ही मिलता हूँ, उसका त्याग कभी नहीं करता ।

उपर्युक्त '**अनन्यसाध्ये**…' इस श्लोकमें कथित उत्तम अधिकारीके लक्षण यहाँ आ गये हैं । आगे चरणमें शरणा-गतिका अङ्ग कहते हैं—

'जिन्हके हौं हित…' उपर्युक्त रीतिसे जिसने अन्य उपायोंसे अपना विश्वास हटा लिया है और प्रभु श्रीरामजीको ही अपना सब प्रकार हितैषी मानकर उपायरूपमें वरण कर रक्खा है, यही शरणागतिकी प्रक्रिया है; यथा—

**उपायत्वमुपेयत्वमीश्वरस्यैव यद्भवेत् ।**
**शरणागतिरित्युक्ता शास्त्रमानाद्विवेकिभिः ॥**
( रहस्यत्रय-हरिदासकृत )

—'जहाँ ईश्वर ही उपाय और उपेय ( फल ) होता है, शास्त्र-प्रमाणसे विवेकियोंने उसे ही शरणागति कहा है ।' इसका भाव यह कि शरणागति 'तवास्मि' कहकर आत्म-निक्षेपरूपमें होती है । तबसे शरणागत नाम, रूप, लीला

और धामकी निष्ठामें रत रहता हुआ जीवन समाप्तकर अन्तमें तत्क्रतुन्यायसे उसी निष्ठासे परधाममें भी परिकर होकर रहता है, यही उपाय और उपेयकी एकता है। श्रुति भी कहती है—

**'सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चिता ॥'**
( तैत्ति० २ । १ )

वह मुक्तात्मा ब्रह्मके साथ-साथ ही ( परिकर एवं परिच्छदरूपसे ) सब कामनाओंका भोग करता है। इस प्रकार शरणागति-पुरस्सर भक्तिमें उपाय और फलकी एकता है।

'तिन्हहिं लागि धरि देह…'—इस प्रकारके शरणागत-के लिये आप देह धारण करके भी सब कुछ करते हैं; किसीके पुत्र, किसीके शिष्य, किसीके दामाद और किसीके सारथि भी बनते हैं।

'डरउँ न सुजस नसाउ'—गीता ४ । ६ तथा ९ । ११ के अनुसार अजत्व, अव्ययत्व और सर्वेश्वरत्वरूप सुयशके नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है, फिर भी मैं नहीं डरता; प्रत्युत सुयश-रक्षाके साथ-साथ प्रपन्नके साथ बरत लेता हूँ।

'पुनि पुनि भुजा उठाइ…'—वहाँ तीर्थपति समुद्रके तटपर जहाँ चारों ओर जाम्बवान् एवं हनुमान् आदि भक्तों-का समाज चालीस कोसमें है, सब कोई देखें और सुनें, इसलिये बार-बार भुजा उठाकर प्रतिज्ञा सुनाते हैं, इस प्रतिज्ञाका बड़ा महत्त्व है; यथा—

मुनि समाज अरु तीरथराजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
( रामचरितमानस अयो० २१० )

इसपर मुमुक्षु महान् विश्वासपूर्वक प्रभुपर निर्भर हो शरण होकर कृतार्थ होंगे। महर्षि वाल्मीकिजीने इसी स्थलकी इसी प्रतिज्ञाको यों लिखा है—

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥**
( वाल्मीकि० ६ । १८ । ३३ )

दीन होकर एक बार ही 'मैं आपका हूँ' इस भावकी ( आत्मसमर्पणकी ) याचना करता है, उसे सभी प्राणियोंसे एवं उस प्रकारके सभी प्राणियोंके लिये मैं अभय देता हूँ।

'नहिं कोउ प्रिय मोहिं दास सम' यथा—

अनुज राज संपति बैदेही। से
मोरे अधिक दास पर प्रीती।
( रामचरितमानस उत्तर० १५ ) तक

तथा—

सत्य कहउँ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब ॥
( रामचरितमानस उत्तर० ८७ ) इत्यादि।

'कपट प्रीति बहि जाउ'—ऊपर कहा गया कि महान् विश्वास-पूर्वक शरणागति होती है, अतः इसमें दूसरोंकी आशा एवं भरोसा छोड़कर एकमात्र स्वामीपर ही निर्भर रहना पड़ता है। कहीं दूसरेसे स्वार्थ-साधनके लिये आशा एवं भरोसा किया जाता है तो इसीको शरण्य-स्वामीसे कपट-प्रीति कहा जाता है; यथा—

मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा ॥
( रामचरितमानस उत्तर० ४५ )

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
( रामचरितमानस अयो० ३०० )

'सुनि रघुपतिके बचन……'—श्रीरघुनाथजीने सुग्रीव आदि सभी सखाओंसे कहा है, पर श्रीविभीषणजीकी प्रपत्तिपर मुग्ध होकर प्रभुने अपना सहज स्वभाव कहा है, इससे यह सिद्ध हुआ कि इस समय श्रीविभीषणजीमें अधिक प्रेम-निमग्नता एवं चाव है।

'तजि आस त्रास सब'—क्योंकि अन्यसे आशा रखनेमें स्वामीसे उपर्युक्त 'कपट प्रीति' सिद्ध होगी और अन्यका त्रास रहनेपर स्वामीकी—**'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि'** इस प्रतिज्ञा-पर अविश्वास सिद्ध होगा। फिर तो शरणागति ही न रह जायगी। इससे इन आश-त्रासका त्याग तो अवश्य ही चाहिये।

'ऐसे प्रभु कहँ गाउ'—इस प्रसंगके गानेपर प्रभुके ऐसे सहज स्वभावपर उनमें प्रीति एवं विश्वासयुक्त शरणागति होगी और वह दृढ़ रहेगी।

आगे विविध स्वभाव-ज्ञाताओंके वचनोंके कुछ उदाहरण लिखे जाते हैं, उनसे विविध प्रकारके श्रीराम-स्वभाव-सौष्ठवकी झलक देखिये—

( १ ) राम रावरो सुभाउ, गुन, सील, महिमा-
प्रभाउ, जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत

जिन्हके हिये सुथलु, राम-प्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥
( विनय-पत्रिका २५१ )

इसमें शिव आदि चारों स्वभाव आदि चारोंके ज्ञाता हैं, पर विशेष करके विपरीत यथा संख्य-अलंकारकी रीतिसे श्रीभरत-जी स्वभावके ज्ञाता हैं; इससे इनकी प्रेमभक्तिको सराहा गया है—

( क ) मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मोपर कृपा सनेह बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन ते परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥
( रामचरितमानस अयो० २६० )

( ख ) देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥
जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच ।
मागत अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच ॥
( रामचरितमानस अयो० २६७ )

( ग ) सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥
( रामचरितमानस अयो० १८३ )

( घ ) राम जनमि जग कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन आगर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥
बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥
( रामचरितमानस अयो० २०० )

( ङ ) राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आप समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोच उर अपनें॥
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
( रामचरितमानस अयो० २९८ )

( च ) जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
( रामचरितमानस अयो० २३३ )

कौन स्वभाव ? यह भी इन्हीं ( भरतजी ) ने कहा है—

( छ ) जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
( रामचरितमानस उत्तर० )

( २ ) श्रीबृहस्पतिजीने रामस्वभाव कहा है—

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥
सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहि सेवक परम पिआरा॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैर अधिकाई॥
............
अगुन अलेप अमान एकरस। राम सगुन भए भगत प्रेम बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
( रामचरितमानस अयो० २१८-२१९ )

( ३ ) श्रीकाकभुशुण्डिजीने कहा है—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाई॥
जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजहु भ्रम त्यागि॥
( रामचरितमानस उत्तर० ७४ )

(४) श्रीदशरथजीका राम-स्वभाव-स्मरण—

(क) राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥
राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हरासू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥
( रामचरितमानस अयो० १४९ )

(ख) तिलक को बोल्यो, दियो बन, चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िमि ज्यों न बिहर्यो समुझि सील सुभाउ॥
( गीतावली अयो० ५७ )

(५) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने स्वयं भी कहा और निष्ठासे लाभ उठाया है—

(क) सुनत सीतापति सील सुभाउ ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेह-खर खाउ ॥
( विनय-पत्रिका १०० )

यह पूरा पद तथा पद २१५—२१७ भी स्वभावपरक ही हैं।

(ख) ठाकुर अतिहि बड़ो, सील सरल सुठि ।
ज्ञान अगम सिव हूँ, भेंटेउ केवट उठि॥

भरि अंक भेंटेउ सजल नयन, सनेह सिथिल सरीर सों ।
सुर, सिद्ध, मुनि, कबि कहत कोउ न प्रेम प्रिय रघुबीर सों ॥
खग, सबरि, निसिचर, भालु-कपि किये आपु ते बंदित बड़े ।
तापर तिन्ह कि सेवा सुमिरि, जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥
स्वामी को सुभाउ कह्यो, सो जब उर आनिहै ।
सोच सकल मिटि हैं, राम भलो मानिहैं ॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै ।
ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फल पाइहै ॥

( विनय-पत्रिका १३५ )

यहाँ स्वभावज्ञानपर हाथ जोड़कर प्रणाममात्रपर कृतार्थ होना कहा गया है। इस प्रणामका अर्थ शरणागति है। महा० वन० १८९। ५७-५८ में 'गच्छध्वमेनं शरणम्' के प्रति 'नमश्चक्रुर्जनार्दनम्' कहा गया है और इसी प्रणामरूप शरणागतिकी महिमा महा० शान्ति० ४७। ९०-९१ में भी कही गयी है।

(ग) राम-सुभाउ सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई ।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सों साहिब खोरि न लाई ॥

( कवितावली उत्तर० ५७ )

अर्थात् स्वभाव सुन एक बार ही शरण होकर अपने कल्याणकी काङ्क्षा प्रकट की, बस, उसीपर प्रभुने मेरे स्वार्थ और परमार्थ दोनों पूर्ण कर दिये; तथा—

तुलसी तिहारो भये, भयो सुखी, प्रीति प्रतीति बिना हूँ ।
नामकी महिमा, सीलु नाथको, मेरो भलो बिलोकि
अब ते सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥

( विनय-पत्रिका २७५ )

राम नाम महिमा करै काममूरुह आको ।
साखी बेद-पुरान है, तुलसी तन ताको ॥

( विनय-पत्रिका १५२ )

इस प्रकार श्रीराम-स्वभाव-सौन्दर्यके कुछ उदाहरण लिखे गये। इन्हें पढ़कर उदाहृत पात्रोंके समान पाठकगण भी लाभ उठायेंगे; ऐसी आशा करता हूँ।

# परिवार-नियोजनपर विनोबा

( लेखक—श्रीविनोबा )

किसी भी प्रश्नके तीन पहलू होते हैं। आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक। परिवार-नियोजनके तरीकोंके बारेमें भी ये तीन पहलू ध्यानमें रक्खे जाने चाहिये। यह विषय इतना गम्भीर है कि कोई भी राह चलता आदमी इसपर निर्णय दे, उसे मैं नहीं मान सकता। इस विषयपर चिन्तन करनेका तथा राय देनेका अधिकार मैं उपर्युक्त तीनों आधारोंको ठीक-ठीक समझकर राय दे सकनेवालेको ही दूँगा।

फेमिली प्लानिंग ( परिवार-नियोजन ) आध्यात्मिक दृष्टिसे किया जा सकता है। हमें दोसे अधिक बच्चे नहीं चाहिये, यह सोचकर मनुष्यके जीवनमें संयमका योग्य आयोजन किया जा सकता है। चिन्तन करनेवालोंका काम है कि इस विषयका चिन्तन करें। इस दृष्टिसे परिवार-नियोजनका अर्थ होता है, 'आत्मसंयम'—'अपनेपर काबू रखना'। साइंसके जमानेमें यह चीज आसान होनी चाहिये। यह असम्भव बिल्कुल नहीं है। आज ज्ञान-विज्ञानके विकाससे हम मानव-मनको अधिक समझ सकते हैं। उसपर किन-किन बातोंका कैसा असर होता है, यह हम अधिक जान सके हैं। परिवारका उद्देश्य क्या है? ब्रह्मचर्यकी साधना क्या होती है? उसमें कौन-सी शक्ति भरी है? इन सब चीजोंका साइंसके प्रमाणोंसे प्रजाको अधिक स्वच्छ ज्ञान दिया जा सकता है। जितना पहले कभी नहीं था, उतनी सहूलियत यह सब समझने-समझानेकी आज है।

अपनेमें एक ऐसी शक्ति पड़ी है, जिसको ऊपर उठाया जा सकता है। जैसे लालटेनमें तेल होता है। जितना अखण्ड तेलका प्रवाह होगा, प्रकाशकी तीव्रता भी उतनी ही होगी। मनुष्यके लिये ब्रह्मचर्य तेल है और प्रज्ञाकी प्रभा, बुद्धिमत्ता यह प्रकाश है। ब्रह्मचर्यके तेलका प्रवाह उसे सतत मिलता रहता है, तो बुद्धिमत्ता तेजस्वी होती है, अगर वह नहीं रहता तो बुद्धि निश्चय ही कमजोर पड़ती है। संतति-नियमनका आध्यात्मिक तरीका वही हो सकता है जो जीवनके तेजको बढ़ानेमें सहायक हो।

संयमका मार्ग ही आध्यात्मिक दृष्टिसे सही मार्ग है। पर जो दूसरा तरीका आज अपनाया जा रहा है, उसमें अपनेपर काबू रखनेकी जरूरत नहीं मानी जाती। 'संतति मर्यादित करें और कृत्रिम उपायोंको अपनायें' इसमें संयम रक्खा भी नहीं जा सकता। सारी योजना ही वहाँ यह है कि बोया तो जाय पर फसल न आये। मान लीजिये कोई किसान बोने निकला

महज आनन्दके लिये। उसने देख-समझकर बोनेके लिये मईका महीना चुना, गरमीके दिन, बारिश नहीं है। उसे मालूम है कि अब उगेगा नहीं। ऐसे बोनेवालेने अक्लका काम किया क्या ? आप कहेंगे यह 'नेशनल वेस्ट' ( राष्ट्रकी सम्पत्तिका नाश ) है। यदि एक मामूली बीज बोया जाता है और बंदोबस्त किया जाता है कि नहीं उगे, तो उसे आप 'वेस्ट' मानते हैं, तो जिस शक्तिसे मनुष्य-निर्माण होगा, उस शक्तिको यदि आप 'वेस्ट' करते हैं तो कितना बड़ा अपराध है ? कितनी बड़ी मूर्खता है ? यह सबके समझने-समझानेकी बात है। लोग यह सब समझ सकते हैं और समझा सकते हैं।

यह जो 'क्रियेटिव ऐनर्जी' ( सृजनात्मक शक्ति ) है, जिसे हम वीर्य कहते हैं। उसीमेंसे वाल्मीकि-जैसे महाकवि पैदा हुए, महावीर हनुमान् उसीमेंसे निकले। प्रतिभावान् पुरुष और तत्त्वज्ञानी उसीमेंसे बने। उस निर्माण-शक्तिका मनुष्य दुरुपयोग करता है यानी संख्या नियमित करके संतानको रोक लिया और उस शक्तिका दूसरी ओर जो उपयोग हो सकता था, उसके बजाय, उसे विषय-भोगमें लगा दिया। इससे केवल संतान ही नहीं रुकेगी, बुद्धिमत्ता भी रुकेगी। यह बहुत समझानेकी जरूरत नहीं है। ब्रह्मचर्यकी हानि होती रहेगी, उसपर अङ्कुश ही नहीं रहेगा, तो इसके परिणामस्वरूप दोनोंकी बुद्धिमता क्षीण होगी, पति-पत्नी संतुलन खो बैठेंगे और निस्तेज बन जायँगे।

वैज्ञानिक ढंगसे सोचकर विषय-वासनापर अङ्कुश रखनेके उपाय हमें ढूँढ़ने चाहिये। आज तो विषय-वासनाके फलस्वरूप संतान-पालनकी जिम्मेदारीका जो अङ्कुश रहता था, वह भी नहीं रहा। संतान भी माता-पिताको वासना-मुक्तिकी ओर ले जा सकती है।

हमारे एक मित्र थे। दिनभर बीड़ी फूँकते थे। जानते थे बीड़ी बुरी है पर उसकी वासनासे मुक्त नहीं हो पाते थे। उनको बच्चा पैदा हुआ। उन्हें लगा कि कहीं बच्चेको बुरी आदत न लग जाय, इससे उन्होंने बीड़ी पीना छोड़ दिया। ऐसा प्रायः नहीं होता; क्योंकि इतनी चिन्ता रखनेवाले बाप इन दिनों होते ही नहीं। लेकिन मैंने अपने एक मित्रकी कहानी आपके सामने रक्खी। उस लड़केने अपने बापको व्यसन-मुक्त किया।

संतानको तालीम देना, उसके साथ बैठना, बोलना, सोना इससे भी वासनापर अङ्कुश रहता है। संतानके लालन-पालनकी जिम्मेदारी माता-पिता मिलकर उठाते हैं तो इससे उनके चित्तपर अङ्कुश रहता है। एक नारायण अपने घरमें पैदा हुआ। शास्त्रकार लिखते हैं। वह नारायण 'नरकात् त्रायते'। वह जो बेटा पैदा हुआ, वह बापको नरकसे बचायेगा। पर यदि बच्चोंको बालसंगोपनगृहमें रख दिया, केवल दूध पिलानेके लिये माता जायगी, इसके सिवा कोई दूसरा सम्पर्क बच्चेके साथ आयेगा ही नहीं, उस हालतमें माता-पिता अकेले रह जाते हैं। इसमें वे बहुत बड़ा नुकसान उठा रहे हैं। उन्होंने यह सीखा नहीं कि उसका बहुत बड़ा आध्यात्मिक पहलू है। मान लीजिये पति-पत्नी संतान उत्पन्न न हो, ऐसा प्रबन्ध करें और अपनी-अपनी विषय-वासना जारी रक्खें तो उनके दिमागोंको कोई संतुलन मिलेगा ही नहीं। इस हालतमें देश तेजहीन हो जायगा। संतान कम होगी, यह लाभ होगा, किंतु सिर्फ संतान ही कम नहीं होगी, ज्ञानतन्तु भी क्षीण होंगे, प्रभा कम होगी, प्रज्ञा कम होगी और तेजस्विता कम हो जायगी।

नैतिक दृष्टिसे देखें तो ऐसी हालतमें यह कोई जरूरी नहीं है कि पति-पत्नीका समागम हो। जब आपने प्रबन्ध कर लिया है कि संतानकी उत्पत्ति न हो तो फिर क्या कारण है कि पति-पत्नीका ही समागम हो ? अन्यके साथ समागम न हो, इसकी क्या वजह है ? नीति कितनी गिरेगी ? अध्यात्म कितना खोयेंगे ? यह नहीं सोचा और यह भी नहीं सोचा कि इसका सामाजिक पहलू भी है।

यह सब सोचते हुए हमारे ध्यानमें आयेगा कि हमारे पूर्वजोंने जो योजना बनायी थी, उसकी दृष्टि बड़ी दीर्घ थी। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम। इस प्रकारकी व्यवस्था थी। २५ सालमें शादी हो, ४५ सालमें पूरी तरह निवृत्त होना है—यह भावना बनेगी तो जीवनमें संयम अपने-आप आयेगा। आज तो १८ सालमें शादी होती है और ५८ सालतक यानी चालीस सालतक वैवाहिक जीवन चलता रहता है। संयमके लिये आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास किस प्रकार किया जाय, ऐसे उपायोंको ढूँढ़ना चाहिये। बहुत ही गम्भीरतासे सोचनेका विषय है, इसलिये मैंने आपके सामने यह विषय खोलकर रक्खा है।

यह माननेकी जरूरत नहीं कि जिस मिट्टीसे जन्तु—प्राणी पैदा होते हैं, उनका भार वहन करनेमें वह मिट्टी असमर्थ होगी। इसलिये यह भय रखना कि जितने लोग पैदा होंगे

उनको पोषण मिलेगा कि नहीं; यह माननेका कोई कारण नहीं है। यह एक सिद्धान्त मैं आपके सामने रख रहा हूँ, कि यदि धरतीसे जो हम प्राप्त करते हैं, वह उसको वापस कर दें तो धरती सबको पोषण दे सकती है। आज उस ओर हमारा ध्यान नहीं है। मल-मूत्र, पेड़ोंके पत्ते, जीवोंकी हड्डियाँ आदि सब मिट्टीमें मिल जायँ, तो मैं कहना चाहता हूँ, जितने प्राणी मिट्टीमेंसे पैदा हुए हैं, उन सबका पोषण करनेके लिये मिट्टी बिल्कुल समर्थ है। मेरे लिये तो यह एक स्वयंसिद्ध बात है। इसलिये संख्या-नियमनके कृत्रिम उपायोंपर जितना जोर दिया जा रहा है, उससे अधिक धरतीको सारा पोषण मिले यह प्रयत्न होना चाहिये।

साथ-ही-साथ लोगोंके दिमागोंको बिगाड़नेवाली जो चीजें हैं, उनपर अंकुश रक्खो। दीवालोंपर गंदे चित्र और इश्तहार लगाये हुए हैं, क्या वे आवश्यक हैं? 'लिटरेचर' के नामपर जो शृङ्गार-साहित्य कामवासनाओंको उत्तेजित करता है, उसका प्रवाह समाजमें कम करो। ऐसा 'लिटरेचर' बच्चोंको क्यों सिखाते हो? अच्छा साहित्य सिखाओ, रामायण-जैसा सर्वोत्तम साहित्य सिखाओ। 'लिटरेचर' के स्थानपर साइंस और गणित अधिक सिखाओ। गम्भीर विषयोंके अध्ययनकी ताकत लोगोंमें पैदा करो। संयमका बातावरण तैयार करो; जरा पुरुषार्थ सिखाओ। प्रायः यह होता है कि जिन प्राणियोंमें पराक्रम कम, पुरुषार्थ कम होता है, उनकी औलाद बढ़ती है। जानवरोंको देखना हो तो शेरकी संतान कम है और बकरीकी ज्यादा है। कीड़े-मकोड़े एक-एक सालमें दुगुना, चौगुना बढ़ते हैं। सार यह कि बच्चोंकी शिक्षाकी अच्छी व्यवस्था करना—यह सबसे बड़ा काम है। उनको संस्कार अच्छे मिलेंगे, उनका पुरुषार्थ जाग्रत् होगा, संयमका वातावरण तैयार होगा तो संतति-नियमन करना आसान होगा।

आखिरमें इस दुनियाँमें परमेश्वर भी तो है। जो सारा इन्तजाम है, उसकी चिन्ता उसे भी तो है। ज्यादा संतान बढ़े नहीं तो वह आपको सद्बुद्धि भी देगा और संयम भी।

( प्रेषक—श्रीमहेन्द्रकुमार, सर्वोदय प्रेस सर्विस )

# जीवेम शरदः शतम्

( लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र का०व्या०सां०स्मृ०तीर्थ )

अधिक दिनोंतक जीवित रहनेकी इच्छा प्राणिमात्रकी होती है। धर्म-प्रधान भारतवर्षमें इसी उद्देश्यसे संध्योपासनका विधान किया है। उध्योपासनमें बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धिके लिये अनेकों मन्त्रोंसे जलको पवित्र करके आचमन करनेका विधान है और बाह्य शुद्धिके लिये मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे शरीरका अभिषेक करनेको लिखा है। साथ-ही-साथ आयुवृद्धिके लिये प्राणायामका विधान है।

इसके पश्चात् भुवनभास्कर भगवान् सूर्यकी उपासनाका क्रम लिखा है। चन्दन, पुष्प आदि अर्घ्यकी वस्तु जलके साथ लेकर सूर्यके लिये अर्घ्य प्रदान करनेकी विधि है। इसके पश्चात् सूर्योपस्थानके चार मन्त्र हैं। उनमें सूर्यकी स्तुतिके साथ उनसे अपने जीवनकी वस्तुओंके लिये प्रार्थना है। यथा—

**ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।**

इससे यह प्रतीत होता है कि मनुष्यकी परमायु एक सौ वर्षकी है और वह कर्म करते हुए एक सौ वर्षतक जीवित रहना चाहता है। ईशोपनिषद्के दूसरे मन्त्रमें भी यही बात लिखी है। यथा:—

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥**

( ईशोप० मं० २ )

अर्थात् मनुष्यको कर्म करते हुए एक सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। इस तरह विहित कर्म—अग्निहोत्रादि करते रहनेसे मनुष्य कर्मफलसे लिप्त नहीं होता। अर्थात् कर्मफलको प्राप्त करनेकी इच्छासे काम्यकर्म भव-बन्धनका कारण होता है, अन्यथा निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर कर्म करनेसे प्रारब्धका भोग हो जाता है और संचित कर्मकी उत्पत्ति होती ही नहीं, इससे परम शान्ति मिल जाती है।

प्राचीन ऋषिगण अपने इन्हीं कर्तव्योंका पालन करते थे जिससे उनकी इन्द्रियाँ जीवनभर शिथिल नहीं होती थीं, सौ वर्षतक कर्तव्य-पालन करते हुए जीवित रहते थे।

हमलोगोंके नेत्रोंमें जो ज्योति है वह सूर्यकी ज्योति है। सूर्य ही प्रकाशके अधिष्ठाता हैं, अतः आजीवन हमारे नेत्रोंकी ज्योति बनी रहे, ऐसी प्रार्थना हम सूर्यसे करते हैं। इसी

तरह अन्य इन्द्रियोंमें जो शक्ति प्राप्त है वह सूर्यसे ही प्राप्त है। अतः हमें प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करनी चाहिये—**पश्येम शरदः शतम्**—हम सौ वर्ष तक देखें, हमारे नेत्रोंकी ज्योति कम न हो। **जीवेम शरदः शतम्**—हम सौ वर्षतक जीवित रहें, हम अपनी पूर्ण आयुको भोगकर कर्तव्य पालन करके भगवान्‌को प्राप्त करें। **प्रब्रवाम शरदः शतम्**—हम सौ वर्षतक बोलें अर्थात् शास्त्रोंका अध्ययन और अध्यापन करें तथा भगवान्‌का भजन करके अन्तमें उन्हींमें लीन हो जायँ। **शृणुयाम शरदः शतम्**—तात्पर्य यह है कि हम सौ वर्षतक सुनें—अर्थात् सौ वर्षतक सत्सङ्ग करें, श्रीभगवान्‌के गुणोंको सुनें और अन्तःकरणको पवित्र करें। **एवमदीनाः स्याम शरदः शतम्**—अर्थात् जबतक हम जीवित रहें, दीन न हों, जिससे आश्रममें आये हुए अतिथियोंका सत्कार कर सकें। अतः हमारे पास इतना धन रहे जिससे स्वयं भोजन करें और समागत अतिथिको भी भोजन करावें।

इस तरह अपनी आयु और इन्द्रियोंमें शक्तिके लिये सर्वत्र उपनिषदोंमें प्रार्थनाके मन्त्र पाये जाते हैं। प्रश्नोपनिषद्‌के शान्तिपाठके मन्त्रमें भी ऐसी ही प्रार्थना प्राप्त होती है। यथा—

**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥**

हे देवगण! हम कानोंसे शुभ वचन सुनें। यज्ञादि अनुष्ठान करते हुए नेत्रोंसे माङ्गलिक वस्तुओंको देखें। हमलोगोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दृढ़ रहें जिससे हमलोग देवताओंका हित करते हुए अपनी पूर्ण आयुका उपभोग करें।

ऋषिगण इसी तरह यज्ञादि-अनुष्ठान और अपने नित्यकर्म नियत समयपर करते हुए पूर्ण आयुका उपभोग करते थे और उनकी इन्द्रियाँ सबल रहती थीं। उनके शरीरके सभी अवयव दृढ़ और मजबूत रहते थे। इससे उनका जीवन भारभूत नहीं होता था।

आजकल हम नित्यकर्म भूल गये हैं, जिससे न तो हमारा शरीर सबल होता है, न मन दृढ़ रहता है, बुद्धिकी शक्ति दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है। पचास वर्षके बाद ही हमारा जीवन हमें भार मालूम पड़ने लगता है। इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, नेत्रमें ज्योति नहीं रहती। साठ वर्षकी उम्र होनेपर हम किसी कामको करने योग्य नहीं समझे जाते। हमारी परमायु ६० से ७० के अंदर हो गयी!

जबकि वैदिक शास्त्रके अनुसार मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी कही गयी है। वहाँ ज्योतिष शास्त्रके अनुसार तो मनुष्यकी आयु १०८ और १२० वर्ष कही गयी है; क्योंकि मनुष्यके जीवन-भरमें नव ग्रहोंकी दशा एक बार बारी-बारीसे आती है और एक राशिपर उनकी स्थिति जितने दिनकी होती है उनको जोड़नेसे १२० वर्ष होते हैं। कुछ ज्योतिर्विदोंके मतके अनुसार १०८ ही वर्षकी परमायु होती है।

इस समय मृत्यु-संख्याको देखनेसे और अल्प अवस्थामें मृत्युकी संख्यासे पता चलता है कि जितना ही हमलोग अपने कर्तव्यसे दूर हट रहे हैं, उतनी ही हमारी इन्द्रियाँ अल्पकालमें कार्य करनेके योग्य नहीं रहतीं। बाह्य कृत्रिम उपकरणोंको काममें लाते हैं जिससे लाभके स्थानमें हानि ही प्रतीत होती है।

पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंने भी इस बातको स्वीकार किया है कि आध्यात्मिक विज्ञानके समक्ष यह भौतिक विज्ञान अत्यन्त क्षुद्र है, क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञानसे जिस वस्तुकी प्राप्ति होती है वह अक्षय होती है और भौतिक विज्ञानसे प्राप्त होनेवाली वस्तु नश्वर होती है।

आध्यात्मिक विज्ञानकी सफलताके लिये अन्तःकरणकी शुद्धि अपेक्षित है जो प्रतिदिन संध्यावन्दन करनेसे शुद्धताको प्राप्त करती है। अतः यदि हम इस संसारमें अपने जन्मको सफल बनाना चाहते हैं और अपनी इन्द्रियोंद्वारा भगवान्‌का भजन करते हुए पूर्णायुको भोगना चाहते हैं तो हमें अपने वर्णोचित संध्या-तर्पण आदिसे चित्तको शुद्ध करके ईश्वरका भजन करते हुए १०० वर्षतक जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। **'शतायुर्वै पुरुषः'** इस शास्त्रीय वचनको सत्य बनाना चाहिये।

# श्रीराधा-स्वरूप-गुण-महिमा

[ श्रीराधाष्टमी-महोत्सव ( संवत् २०१८ ) पर हनुमानप्रसाद पोद्दारके भाषण ]

( १ )

( दिनका प्रवचन )

वृन्दावने विहरतोरिह केलिकुञ्जे
मत्तद्विपप्रवरकौतुकविभ्रमेण ।
संदर्शयस्व युवयोर्वदनारविन्द-
द्वन्द्वं विधेहि मयि देवि कृपां प्रसीद ॥
हा देवि ! काकुभरगद्गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः ।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके ! निजगणे गणनां विधेहि ॥

भगवान् सत्-चित्-आनन्दपूर्ण हैं । उनके 'सत्' अंशकी शक्तिका नाम है 'संधिनी', चिदंशकी शक्तिका नाम है 'संवित्' और आनन्दांशकी शक्तिका नाम है 'ह्लादिनी' ।

श्रीकृष्ण स्वयं परमाह्लादस्वरूप होकर भी जिसके द्वारा स्वयं आह्लादित होते और दूसरोंको आह्लादित करते हैं, उसका नाम है 'ह्लादिनी'; स्वयं ज्ञानस्वरूप होकर भी जिसके द्वारा वे जान सकते और दूसरोंको जना सकते हैं—उसका नाम है 'संवित्' और स्वयं नित्य सत्तास्वरूप होकर भी जिसके द्वारा अपनी तथा दूसरोंकी सत्ता धारण करते हैं, उसका नाम 'संधिनी' है ।

भगवान् सदैव सोम्येदमग्र आसीदित्यत्र सद्रूपत्वेन व्यपदिश्यमानो यया सत्तां दधाति धारयति च सा सर्वदेशकाल-द्रव्यादिप्राप्तिकरी संधिनी । तथा संविद्रूपोऽपि यया संवेत्ति संवेदयति च सा संवित् । तथा ह्लादरूपोऽपि यथा संविदुत्कर्ष-रूपया तं ह्लादं संवेत्ति संवेदयति च सा ह्लादिनीति विवेचनीयम् । ( भगवत्संदर्भ ११८ )

सत्-चित्-आनन्द—इन तीनों भगवत्स्वरूप गुणोंको जैसे कभी एक दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता, वैसे ही संधिनी, संवित् और ह्लादिनी—इन एक ही भगवत्स्वरूपा चिच्छक्तिके तीन स्वरूपोंको कभी एक-दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता ।

इनमें संधिनीके सार अंश या चरम परिणतिका नाम है—'शुद्ध-सत्त्व' । इस शुद्ध-सत्त्वमें ही भगवान्‌की सत्ता स्थित है । 'संवित्'का सार या चरम परिणति है श्रीकृष्णका भगवत्ताज्ञान अर्थात् श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं—यह ज्ञान या अनुभव । और ह्लादिनीका सार है—विशुद्ध प्रेम—निर्मल श्रीकृष्ण-सुखेच्छारूप दिव्य वृत्ति । इच्छा मनकी एक वृत्ति ही होती है । परंतु श्रीकृष्णसुखेच्छा वस्तुतः प्राकृत मनकी वृत्ति नहीं है । यह श्रीकृष्णकी स्वरूपाशक्ति—ह्लादिनीप्रधान 'शुद्ध-सत्त्व'-की एक वृत्ति है । भगवत्कृपासे भक्तका चित्त ह्लादिनीप्रधान शुद्ध-सत्त्वके साथ तादात्म्य प्राप्त करके शुद्ध-सत्त्वका समानधर्मी हो जाता है । जैसे लोहा जब अग्निके साथ तादात्म्य प्राप्त करता है, तब लोहेको आश्रय बनाकर अग्नि ही अपनी ( किसी वस्तुको जला देना आदि ) क्रिया करती है, परंतु वह क्रिया वहाँ कहलाती है लोहेकी, उसी प्रकार शुद्ध-सत्त्वके साथ तादात्म्य प्राप्त किये हुए मनके माध्यमसे जब शुद्ध-सत्त्व ही अपनी क्रिया करता है, तब वस्तुतः वह केवल श्रीकृष्ण-सुखके लिये होनेवाली ह्लादिन्यंशप्रधान शुद्ध-सत्त्वकी ही वृत्ति होती है, पर वह कहलाती है 'मनकी वृत्ति' । और उसीको 'प्रेम' कहते हैं ।

नित्यसिद्ध भगवत्-परिकर और उनके मन-इन्द्रियादि तो अप्राकृत विशुद्ध सत्त्वमय ही हैं । अतः उनके चित्तमें तो अनादिकालसे ही शुद्ध-सत्त्वकी वृत्ति विशुद्ध 'श्रीकृष्ण-प्रीति-इच्छा' या 'विशुद्ध प्रेम' सहज ही वर्तमान है । साधनसिद्ध भक्तोंमें पीछेसे भगवत्कृपासे इस विशुद्ध प्रेमका प्रादुर्भाव होता है । इस प्रेमका प्रादुर्भाव होनेपर चित्त सम्यकरूपसे मसृण या निर्मल हो जाता है और उसमें श्रीकृष्णके प्रति आत्यन्तिक अनन्य ममता-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है । यही 'प्रेम' उत्तरोत्तर उच्च स्तरपर पहुँचते-पहुँचते 'भाव'रूपमें परिणत होता है । प्रेमकी घनीभूत गाढ़तम अवस्था या चरम परिणतिका नाम ही 'भाव' है । इस भावकी प्रगाढ़तम अवस्थाको 'महाभाव' कहते हैं । इसके मोदन-मादन भावोंमें मादन सर्वोत्कृष्ट है और यह केवल श्रीराधाजीमें ही है । अतएव परम दिव्य परमोत्कृष्ट विशुद्ध प्रेमकी प्रत्यक्ष मूर्ति श्रीराधाजी ही हैं ।

इस भाव या महाभावका केवल कान्ता-प्रेम या माधुर्य-रतिमें ही उदय होना सम्भव है । दास्य, सख्य और वात्सल्यमें इसका विकास प्रायः नहीं होता । अतएव इस पवित्रतम

प्रेमकी पूर्ण परिणति और इसकी एकमात्र मूल उत्सरूपा श्रीराधाजी ही हैं। ये श्रीराधाजी कैसी हैं—

१–कृष्णप्रेयसी कान्तागणमें सर्वशिरोमणि श्रीराधा।
लक्ष्मी-महिषी-गोपीजनकी मूल, मुकुटमणि श्रीराधा॥
२–कृष्ण-प्रेम-भावित-चित्तेन्द्रिय-बुद्धि-अहं-सारा राधा।
निर्मल प्रेम पूर्ण पावनकी मधुर सुधा-धारा राधा॥
३–लीलामयी, कृष्णलीलाकी शुचि सहायिका श्रीराधा।
कृष्ण-सुखैक-जीवना, प्रियतम-स्नेह-दायिका श्रीराधा॥
४–प्रियतम शुचि माधुर्य-सुधाकी केवल आस्वादिनि राधा।
रूप-छटासे रूप-सदन-मनकी नित उन्मादिनि राधा॥
५–मृदुता-शीतलता-सुशीलता-गुण-गण-आधारा राधा।
चतुरा-सरला, मौना-मुखरा, मधु-मधुराकारा राधा॥
६–सदा प्रेममें कमी देखती, सदा प्रेम-भूखी राधा।
सदा रसमयी, सदा देखती अपनेको सूखी राधा॥
७–सर्वगुणमयी, गुण-गौरव-अभिमान-विरहिता श्रीराधा।
महामानिनी विमल, वियोगिनि, नित प्रियतमसहिता राधा॥
८–उज्ज्वल दिव्य त्याग अनुपमकी परमादर्श मूर्ति राधा।
दुर्लभ कृष्ण-प्रेमकी नव-नव सहज विचित्र स्फूर्ति राधा॥

श्रीकृष्ण-कान्ताओंके तीन प्रकार हैं—लक्ष्मीगण ( वैकुण्ठादिमें भगवत्स्वरूपोंकी कान्ताएँ ), महिषीगण ( द्वारकापुरीकी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियाँ ) और व्रजाङ्गनाएँ। इन श्रीकृष्णकी प्रेयसी कान्ताओंमें श्रीराधा सर्वशिरोमणि हैं और इन सबकी मूल शक्ति एवं सबके मस्तकोंके मुकुट-स्वरूप स्वयं श्रीकृष्णकी भी मणिस्वरूपा हैं। इन श्रीराधाके चित्त, इन्द्रिय, शरीर, बुद्धि और अहंकार—सभी ह्लादिनीके साररूप श्रीकृष्णप्रेमके द्वारा ही गठित हैं, प्राकृत रक्त-मांसादिके द्वारा नहीं। ये श्रीराधा विशुद्ध, परिपूर्ण, सबको पवित्र करनेवाले मधुर प्रेमकी सुधाधारा हैं, जो सदा सबको सुधा-प्लावित करती रहती हैं—मर्त्य जगत्के कामोपभोगसे मुक्त करके नित्य सत्य दिव्य प्रेमसरितामें बहाती रहती हैं। ये श्रीराधा स्वयं लीलामयी हैं और श्रीकृष्णकी पवित्र लीलाओंमें सदा सहायिका हैं। इन श्रीराधाका जीवन एकमात्र श्रीकृष्ण-सुखमय है और ये प्रियतम श्रीकृष्णको सदा स्नेहदान देती रहती हैं। ये श्रीराधा ही केवल अपने प्रियतम श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यरूप सुधाका पूर्ण रसास्वादन करती हैं और अपनी रूपछटासे रूपके सदन श्रीकृष्णके मनको उन्मत्त बनाये रहती हैं। श्रीराधाजी मृदुता, शीतलता, सुशीलता आदि गुणगणोंकी आधार हैं। ये श्रीकृष्ण-सुख-सेवामें बड़ी निपुण हैं, परंतु बड़ी ही सरलहृदया हैं। ये श्रीराधा और सभी विषयोंमें सर्वथा मौन रहती हैं, परंतु प्रियतम श्रीकृष्णके गुणगानमें बड़ी मुखरा हैं—सदा गुण-गान करती ही रहती हैं। ये श्रीराधा मधुके समान मधुर आकारवाली हैं—इनके रोम-रोमसे मधुरता निखरती और बिखरती रहती है। इतना होनेपर भी श्रीराधा अपनेमें सदा प्रेमकी कमी ही देखती हैं और सदा ही प्रेमकी भूखका अनुभव करती हैं। ये श्रीराधा सदा रसमयी होनेपर भी प्रेमस्वभाववश अपनेको सदा रसहीन—सूखी ही देखती हैं। ये श्रीराधा सम्पूर्ण सद्गुणमयी हैं, परंतु अपने गुणोंके गौरव या अभिमानसे सर्वथा रहित हैं। ये महान् मानिनी हैं; पर इनका वह मान होता है निर्मल प्रेमस्वरूप ही, प्रेमका एक उच्च स्तर ही। ये श्रीराधा प्रेम-वैचित्त्यके समय वियोगका अनुभव करती हैं, परंतु वस्तुतः ये नित्य-निरन्तर प्रियतम श्रीकृष्णके साथ ही रहती हैं। ये श्रीराधा उज्ज्वल दिव्य त्यागकी परम आदर्श अनुपम मूर्ति हैं। इन श्रीराधामें सहज ही परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-प्रेमकी नयी-नयी विचित्र स्फूर्तियाँ होती रहती हैं।

यह महामहिमामयी श्रीराधाके स्वरूपका तनिक-सा सांकेतिक दिग्दर्शनमात्र है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जब इनके गुणोंका वर्णन तो दूर रहा, थाह पानेमें भी असमर्थ हैं, सदा मुग्धचित्तसे इनका गुण-गान ही करते रहते हैं, तब इनके महत्त्व और गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है। पवित्र गोपी-प्रेमकी साधनामें प्रवृत्त साधकको श्रीराधाके उपर्युक्त गुणोंको आदर्श मानकर चलना चाहिये।

इतनी बात अवश्य है कि जिन लोगोंने श्रीकृष्णकी व्रज-लीलामें, उनके गोपी-वल्लभ स्वरूपमें, श्रीगोपाङ्गनाओंमें और महामहिमामयी श्रीराधामें जागतिक हेय भावकी कल्पना की है या जो करते हैं, वे या तो परात्पर श्रीराधा-कृष्णके स्वरूपकी अनभिज्ञतासे ही ऐसा करते हैं अथवा उनके भोगराज्यकी राधा उन्हें वैसी ही दिखायी देती होंगी। मेरी राधा तो ऐसी हैं, जिनके पवित्रतम प्रेमराज्यमें मलिन काम और भोगके कल्पनालेशका भी कभी कहीं प्रवेश नहीं है। वे विलक्षण शृङ्गार धारण करती हैं, परंतु उसमें कहीं तनिक भी आसक्ति नहीं है; उनका पवित्र करनेवाला प्रेम मोहसे सर्वथा रहित है। उनमें ममता है, परंतु वह स्व-सुख-इच्छासे विरहित है। उनके अपने योग-क्षेम पूर्णरूपसे प्रियतम श्रीकृष्णमें समर्पित हैं। वे

खाती-पीती हैं, पर स्वादके लिये नहीं। वे अत्यन्त मानवती हैं, किंतु अभिमानसे रहित हैं। उनमें भोगोंका बाहुल्य है, पर भोग-दृष्टिसे वे नित्य भोगरहित हैं। वस्तुतः वे केवल अपने प्रियतमके ही पवित्रतम सुखकी खान हैं। उनका इन्द्रिय-समूह, उनका शरीर, उनका मन, उनके प्राण, उनकी बुद्धि और उनका अहं—सभी कुछ प्रियतमके लिये ही है। उनसे उनका अपना कुछ भी काम नहीं है, वे सब सदा प्रियतमके कार्यमें ही लगे रहते हैं। श्रीराधासे जगत्‌में जगत्‌के सारे व्यवहार होते हैं, पर होते हैं वे सहज ही संयमपूर्ण। उनका किसीसे अपना कोई सम्पर्क नहीं है। केवल प्रियतमका सुख ही उनके जीवनका सार-सर्वस्व है। मेरे जीवनकी साध्य वे त्रिभुवन-पावनी श्रीराधा ऐसी हैं जो नित्यतृप्त भगवान् श्रीमाधवकी भी पवित्रतम परमाराध्या हैं।

मेरी उन राधाके शुचितम प्रेमराज्यमें नहीं प्रवेश।
काम-भोगका मलिन, कभी भी किंचित् कहीं कल्पना-लेश॥
रागरहित शृङ्गार अनूठा, मोहरहित है पावन प्रेम।
सुख-वाञ्छा-विरहित ममता है, पूर्ण समर्पित योग-क्षेम॥
स्वादरहित सब खान-पान हैं, है अभिमानरहित अतिमान।
भोगबहुलता भोगरहित नित, प्रियतम-सुखकी शुचितम खान॥
इन्द्रिय-तन-मन-प्राण-अहं-मति हैं प्रियतमके लिये तमाम।
नहीं कार्य कुछ निजका उनसे, करते सब प्रियतमका काम॥
संयमपूर्ण सहज ही होते जगमें, जगके सब व्यवहार।
नहीं किसीसे उनका मतलब, प्रियतम-सुख ही केवल सार॥
मेरी ऐसी हैं वे राधा त्रिभुवन-पावनि जीवनसाध्य।
नित्य-तृप्त श्रीमाधवकी जो हैं पवित्रतम परमाराध्य॥

इन श्रीराधाका जीवन परम त्यागमय तथा सर्व-समर्पणमय है और स्वरूपतः श्रीराधा श्रीमाधवसे सर्वथा अभिन्न रहती हुई ही नित्य दिव्यलीला-विहारिणी हैं।

हमें श्रीराधा-माधव ऐसी सद्बुद्धि और सद्दृष्टि प्रदान करें, जिससे हम उनकी यथार्थ स्वरूप-स्थितिको एवं उनकी दिव्य रसमयी लीलाके परम पावन रहस्यको समझ-देख सकें।

आज श्रीराधाजीके लीला-प्राकट्यके इस परम पवित्र महान् शुभ अवसरपर हम अपनेको उनके श्रीचरणोंमें डालकर उनसे प्रार्थना करें—

श्रीराधा अब देहु मोहि तव पद-रज-अनुराग।
जातें इह-पर भोग में होय उदय बैराग॥
मोच्छहु की माया मिटै, कटै सकल भव भोग।
तुम दोउन के चरन कौ बन्यौ रहै संजोग॥
जो कछु तुम चाहौ, करौ राधा-माधव दोउ।
तुम्हरे मनकी सहज रुचि चाह जु मेरी होउ॥
सेवा कौ कछु काम जो हो मेरे अनुहार।
छोटौ-मोटौ बकसि मोहि करौ कृपा-बिस्तार॥
पर्यो रहौं नित चरनतल परसौं नित पद-धूल।
पगदासी पौंछत रहौं अग-जग सगरौ भूल॥

रसवलितमृगाक्षीमौलिमाणिक्यलक्ष्मीः
प्रमुदितमुरवैरिप्रेमवापीमराली।
व्रजवरवृषभानोः पुण्यगीर्वाणवल्ली
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु॥

बोलो श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीकृष्णानन्दिनी श्रीराधारानीकी जय जय जय!

( २ )

( रात्रिका प्रवचन )

श्यामप्रेमविनोदिनी मधुरिमाधाराधरे स्मेरिणी
गौरी प्रेमवती शुभा च सुभगा प्रेमाब्धिसंवर्धिनी।
गण्डे मण्डितकुण्डला कटितटे धत्ते मुदा किङ्किणीं
लीलाकाञ्चनदेहिनी विजयते वृन्दावनस्थायिनी॥
शुद्धस्वर्णविडम्बिनी परिलसल्लावण्यसन्मोहिनी
नानारत्नविलासिनी मधुरिमाधाराधरे वंशिनी।
कृष्णप्रेमतरङ्गिणी निरवधि प्रेमामृतालापिनी
श्यामप्रेमविनोदिनी विजयते राधा सुधादेहिनी॥

परम प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति होनेवाले मधुर प्रेमको 'मधुरा रति' कहते हैं। यह मधुरा रति तीन प्रकारकी होती है—'साधारणी', 'समञ्जसा' और 'समर्था'।

साधारणी रतिमें स्व-सुख-वासनारूप सम्भोगेच्छा रहती है, पर उसीके साथ कुछ श्रीकृष्ण-सुखेच्छाका भी उदय हो जाता है, जैसा कुब्जामें हुआ। इसीलिये इसे भी रति कहा गया है, अन्यथा यह तो अग्राह्य ही है। समञ्जसा रतिमें श्रीकृष्ण-सुखेच्छा ही रहती है, परंतु कभी-कभी श्रीलक्ष्मी-रुक्मिणी आदिके सदृश पत्नीत्व-भावके कारण स्वसुखरूपा सम्भोगेच्छाका भी उदय हो जाता है, यद्यपि वह होता है बहुत ही सामान्य तथा अत्यन्त गौणरूपमें ही और वह भी फलतः श्रीकृष्णसुखके लिये ही। समर्था रति एकमात्र कृष्ण-सुखेच्छामयी होती है। उसमें स्व-सुख-वासनाका कहीं

कभी गन्धलेश भी नहीं रहता । जैसे अत्यन्त कठिन लौहखण्डमें सूईकी नोक प्रवेश नहीं कर सकती, वैसे ही समर्था रतिमें एकमात्र और एकमात्र श्रीकृष्ण-सुख-वासनाके अतिरिक्त अन्य किसी भी वासनाका तनिक-सा भी उदय कभी नहीं हो सकता । इसीसे 'समर्था रति'को प्रगाढ़तमा रति कहा जाता है । अचिन्त्यानन्तसौभाग्यशालिनी, परमोज्ज्वल त्यागकी सजीव मूर्ति श्रीव्रज-सुन्दरियोंमें एकमात्र समर्था रतिका ही पूर्ण प्रकाश है । यह समर्था रति महाभावकी अन्तिम सीमातक पहुँचती है । इसमें किसी प्रकारकी लौकिक, पारलौकिक या पारमार्थिक स्व-सुख-वासनाका अथवा अन्य किसी भी वासनाकी कल्पनाका तनिक भी संस्पर्श नहीं है । अतएव समर्था रतिमयी श्रीगोपाङ्गनाओंका 'कृष्ण-सुखैकतात्पर्यरूप' प्रेम ही सबकी अपेक्षा तथा सर्वतोभावेन श्रेष्ठतम है । इन सम्पूर्ण व्रज-गोपियोंमें भी श्रीराधाका प्रेम सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि एकमात्र श्रीराधामें ही समर्था रतिकी चरम परिणति 'मादनाख्य महाभाव' की नित्य प्रतिष्ठा है ।

इस समर्था रतिमें भोग-सुखका कल्पनालेश भी नहीं है । ह्लादिनी शक्तिकी वृत्तिविशेषके द्वारा श्रीकृष्ण और व्रज-सुन्दरियोंके पारस्परिक प्रीतिविधानका नाम ही 'रमण' है । यहाँ 'रमण' शब्दसे श्रीकृष्ण या श्रीव्रजगोपियोंमें किसी हेय अर्थकी कल्पना करना सर्वथा अज्ञान एवं महापातक है । श्रीकृष्णका महाभागा श्रीव्रजसुन्दरियोंमें दिव्य स्वरूप-वितरण तथा श्रीव्रजसुन्दरियोंकी परम प्रियतम श्रीकृष्णकी सुख-सम्पादन-स्वरूपता—परस्परका यह रसास्वादन ही 'रमण' है ।

इन श्रीगोपाङ्गनाओंमें 'नित्यसिद्धा' और साधन-सिद्धा—प्रधानतया ये दो भेद हैं । जो अनादिकालसे कान्ताभावसे श्रीकृष्णकी सेवामें ही लगी हैं, वे 'नित्यसिद्धा' हैं । वे स्वरूपतः ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा अभिव्यक्ति हैं, और जो तपादि तीव्र तथा कठोर तप-साधनाके द्वारा सिद्धि प्राप्त करके अथवा श्रीराधा-माधवकी विशेष अनुकम्पासे दुर्लभ गोपीपदको प्राप्त होकर नित्यसिद्धाओंके साथ श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेममयी सेवा करती हैं, वे 'साधन-सिद्धा' हैं ।

सेवाके प्रकार-भेदसे इन गोपसुन्दरियोंके प्रधानतया दो भेद हैं—'सखी' और 'मञ्जरी' । जो अपने अङ्गादिके द्वारा श्रीराधाकी समजातीय सेवाके द्वारा परम प्रियतम नित्य-अचिन्त्यानन्त आनन्दघन, अखिलरसामृतसिन्धु, अचिन्त्यानन्तविरुद्धधर्माश्रय भगवान् श्रीकृष्णका आनन्द-विधान करती हैं, वे 'सखी' कहलाती हैं—जैसे श्रीललिताजी, विशाखाजी आदि । ये सभी अभिन्नरूपा स्वरूप-शक्तियाँ ही हैं । और जो स्वयं नायिकात्वका कभी स्वीकार नहीं करतीं, श्रीकृष्णाङ्ग-सङ्ग-वाञ्छासे नित्य विरत रहकर नित्य-निरन्तर केवल श्रीराधा-सौख्याभिलाषिणी ही रहती हैं और श्रीराधा-माधवके मधुर मिलन तथा सेवाकी अनुकूलताके द्वारा ही नित्य-निरन्तर उनके सुख-सम्पादनमें ही अपनेको नियोजित एवं संलग्न रखती हैं—वे 'मञ्जरी' कहलाती हैं । ये परम त्यागमूर्ति महामहिमामयी मञ्जरियाँ श्रीकृष्ण-प्राणा श्रीराधाजीकी अत्यन्त प्रिय किंकरी तथा अन्तरङ्ग सेवाकी परम अधिकारिणी हैं । श्रीराधा-माधवकी कुञ्ज-सेवाके अत्यन्त गोपनीय स्थानोंमें भी ये निस्संकोच प्रवेश करती हैं । ललितादि समस्नेहा नायिका-प्राया सखियोंको यह अधिकार प्राप्त नहीं है । अन्तरङ्ग सेवामें इन श्रीराधा-स्नेहाधिका मञ्जरियोंका ही पूर्णाधिकार है । इन मञ्जरियोंके भी दो भेद हैं—'प्राणसखी' और 'नित्यसखी' । श्रीराधाजीकी स्नेहाधिका मञ्जरियाँ 'नित्यसखी' हैं और इनमें जो मुख्य हैं, वे 'प्राणसखी' कहलाती हैं । नित्य सखियाँ प्राणसखियोंके अनुगत रहकर सर्वविध अन्तरङ्ग सेवामें अपनेको नियोजित रखती हैं । मणिमञ्जरी, कस्तूरीमञ्जरी आदि मुख्य नित्यसखियाँ हैं और गुणमञ्जरी, रतिमञ्जरी, रूपमञ्जरी, अनङ्गमञ्जरी आदि प्राणसखियाँ । महान् सौभाग्यवती मुनिजनवन्दिता ये मञ्जरी सखियाँ समस्नेहा नायिकाप्राया ललितादि सखियोंकी अपेक्षा छोटी अवस्थाकी होती हैं । इनमें भी नित्यसिद्धा एवं साधनसिद्धा दोनों ही प्रकारकी सखियाँ हैं । निकुञ्जसेवामें प्रवेश इन श्रीराधा-स्नेहाधिका मञ्जरियोंके अनुग्रह एवं इनके भावोंके आनुगत्य-द्वारा ही होना सम्भव है ।

इन सखी-मञ्जरी आदि श्रीगोपाङ्गनाओंकी बात यहाँ इसीलिये कही गयी है कि इनका प्रेम कामगन्धलेशशून्य, परम पवित्र, सर्वथा विशुद्ध, त्यागमय, केवल श्रीकृष्ण-सुखेच्छामय, सुतरां अत्यन्त उच्च कोटिका है । यही मधुरा रतिका परमोज्ज्वल स्वरूप है । इस मधुरा रतिका मूल निर्झर है—श्रीराधाजी, जिनके साहचर्यसे मधुरातिमधुर स्वयं श्रीकृष्ण नित्य लालायित हृदयसे इस मधुर रसका आस्वादन करते हैं । सखी-मञ्जरी तो उसकी परिपुष्टि और विविध विचित्रताओंका केवल विधान करती हैं । श्रीकृष्णका वास्तविक सुख-प्रीति-विधान करनेवाली तो एकमात्र श्रीराधाजी ही हैं ।

श्रीराधाजी स्वरूपतः श्रीकृष्ण-प्रेमकी एक घनीभूत नित्य चेतन स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधिका स्वयं मादनाख्य महाभावस्वरूपा हैं। वे प्रत्यक्ष मूर्तिमान् ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम प्रेमकी एकमात्र आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी पवित्रतम नित्य-सेवाके द्वारा श्रीकृष्ण-का आनन्द-विधान ही जिनका एकमात्र कार्य है, वे श्रीकृष्ण-कान्तागणमें सर्वश्रेष्ठ तथा सबकी परमाधाररूपिणी हैं।

श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌में भेद तथा अभेद दोनों ही माने जाते हैं। अभेदरूपमें श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त, नित्य एक हैं। और वे ही लीला-रसास्वादनके लिये अनादि-कालसे नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों ही परम प्रेमस्वरूप होनेपर भी, लीलारसकी विशेष पुष्टिके लिये श्रीराधामें ही प्रेमकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है।

इसीसे श्रीकृष्ण स्वयं दिव्य-रसरूप, अचिन्त्यानन्त-रस-सदन, अखिलरसामृतमूर्ति होनेपर भी श्रीराधिकाके प्रेममें उन्मत्त रहते हैं। वे कहते हैं—

कहत स्याम निज मुख सदा, हौं चिन्मय परतत्त्व।
पूर्न ग्यानमय, पै न लखि पायौ प्रिया-महत्त्व॥
रहै सदा बरबस लग्यौ राधा में मन मोर।
रहौं प्रेम-बिह्वल सदा लखि राधा चितचोर॥
राधा-प्रेम अगाध निधि पर्‌यौ रहौं दिन रात।
बिबिध बीचि सँग मधुर नित नाचौं प्रमुदित गात॥
रहत लोभ मो मन सदा, पाऊँ राधा-प्रेम।
दुर्लभ दोष-रहित परम सुचि ज्यौं निर्मल हेम॥
राधा-प्रेमास्वादकी महिमा अमित अपार।
मो सुख ते कोटिन गुनौ वा में सुख-बिस्तार॥

'मैं चिन्मय परतत्त्व हूँ, मैं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हूँ; परंतु मैं प्रियतमा श्रीराधाके महत्त्वका पता नहीं पा सका। मेरा मन निरन्तर बरबस राधामें लगा रहता है। राधाने मेरे चित्तको चुरा लिया है। अतएव मैं सदा राधाके प्रेममें विह्वल रहता हूँ। मैं दिन-रात राधाके अगाध प्रेम-समुद्रमें पड़ा हुआ उसकी मधुर-मधुर विविध लहरियोंके साथ नित्य प्रमुदित मनसे नाचता रहता हूँ। मेरे मनमें सदा यह लोभ लगा रहता है कि मैं भी राधाके सदृश प्रेम प्राप्त करूँ। राधाका वह प्रेम निर्मल स्वर्णकी भाँति दोषरहित, दुर्लभ और परम पवित्र है। राधा जिस प्रेमका आस्वादन करके जो सुख प्राप्त करती है, उस सुखका विस्तार मेरे सुखसे करोड़ों-गुना अधिक है।'

इसका अभिप्राय यह है कि श्रीराधाजी जिस 'आश्रय'-निष्ठ प्रेमके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं, उन्हें उसमें जो सुख मिलता है, वह सुख, श्रीकृष्ण 'विषय' रूपसे राधाके द्वारा सेवा करवाकर जिस प्रेम-सुखका आस्वादन करते हैं, उससे करोड़ों गुना अधिक है। इससे श्रीकृष्ण चाहते हैं कि "मैं प्रेमका 'विषय' न होकर 'आश्रय' बनूँ तथा श्रीराधाजी प्रेमका 'विषय' बनें तो मैं उनकी सेवा करके उनके सदृश सुख प्राप्त करूँ।"

जैसे श्रीकृष्ण परस्परविरुद्धधर्माश्रय हैं, वैसे ही श्रीराधाका प्रेम भी विरुद्धधर्माश्रय है। कहा गया है—

**विभुरपि कलयन् सदाभिवृद्धिं गुरुरपि गौरवचर्यया विहीनः।**
**मुहुरुपचितवक्रिमापि शुद्धो जयति मुरद्विषि राधिकानुरागः॥**
( दानकेलिकौमुदी )

'विभु ( पूर्ण ) होनेपर भी सदा वर्धनशील, गुरु ( सर्वोत्कृष्ट ) होनेपर भी गौरव—अहंकार आदिसे रहित और बढ़ी हुई वक्रिमाके होते हुए ही जो शुद्ध ( निर्मल ) है—मुरारि श्रीकृष्णके प्रति श्रीराधिकाका जो ऐसा अनुराग है, वह सदा विजयशाली है।'

श्रीराधाका प्रेम चिच्छक्तिकी वृत्ति है। चिच्छक्ति विभु—पूर्ण है, वह असीम तथा सर्वव्यापक है। अतएव श्रीराधाका प्रेम भी विभु, पूर्ण, असीम तथा सर्वव्यापक है। जो असम्पूर्ण होता है, वही बढ़कर सम्पूर्णताको प्राप्त होता है। परंतु जो पूर्ण है, उसमें कभी वृद्धि सम्भव नहीं। अतएव राधाप्रेम भी विभु होनेके कारण उसमें वृद्धिके लिये अवकाश नहीं है। जहाँ प्रेमका चरम विकास है, उसीको 'विभु' प्रेम कहा जाता है। 'मादनाख्य महाभाव'में ही प्रेमका पूर्ण विकास है। इसी मादन-प्रेम-समुद्रमें स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग आदिकी तथा इनके अन्तरस्थ अनन्त विचित्र भावोंकी अचिन्त्यानन्त-रससुधामयी विविध विचित्र तरङ्गें उठा करती हैं। अतएव यह मादनाख्य महाभाव ही विभु प्रेम है। यही राधाके प्रेमकी विशिष्टता है। इस प्रकार उस विभु प्रेममें वृद्धिकी तनिक भी सम्भावना न होनेपर भी वह प्रतिक्षण बढ़ता रहता है—'प्रतिक्षणवर्धमानम्'।

यह श्रीराधा-प्रेमकी परस्पर-विरुद्धधर्माश्रयताका ही एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

दूसरे, मादनाख्य महाभाव रूप श्रीराधा-प्रेमके सदृश श्रेष्ठ या महान् वस्तु कोई है ही नहीं। 'मादनोऽयं परात्परः।' इतना गौरवमय होनेपर भी श्रीराधाप्रेम मदीयतामय मधुर स्नेहसे उदित होनेके कारण सर्वथा ऐश्वर्य-गन्धरहित है। वह न तो गौरव चाहता है और न मानता ही है। सर्वश्रेष्ठ होनेपर भी उसमें अहंकारादिका लेश नहीं है। श्रेष्ठ वस्तुमें प्रायः श्रेष्ठत्वका अभिमान होता है, पर राधा-प्रेममें वह तनिक भी नहीं है। यह भी राधाप्रेमके विरुद्धधर्माश्रयत्वका एक उदाहरण है।

श्रीराधाका प्रेम अत्यन्त निर्मल, विशुद्ध, सरल और श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमय एकमात्र श्रीकृष्ण-सुखरूप है। मन, प्राण—सब कुछ देकर सर्वतोभावेन श्रीकृष्णका सुख-विधान ही उसकी प्रत्येक सहज चेष्टाका स्वरूप है। अतएव ऐसे प्रेममें वामता या वक्रताके लिये कहीं भी स्थान नहीं होना चाहिये। तथापि इतने सुनिर्मल राधाप्रेममें भी वामता या वक्रता दिखायी देती है, यह भी राधाप्रेमके विरुद्धधर्माश्रयत्वका एक उदाहरण है। परंतु इस वामता या वक्रतासे राधाप्रेमकी पूर्णतम निर्मलतामें तनिक भी हानि नहीं होती। हानि होती है विजातीय वस्तुके सम्मिश्रणसे, जैसे जलमें कीचड़-कूड़ा आदि मिलनेपर जलकी निर्मलतामें हानि होती है; पर राधाका यह वामभाव और वक्रता प्रेमसे भिन्न-जातीय कोई पृथक् वस्तु नहीं है। समुद्रमें तरङ्गोंकी भाँति ये प्रेमकी ही तरङ्गविशेष हैं। इनके उदयसे प्रेम मलिन नहीं होता, वरं उसकी उज्ज्वलता तथा आस्वादन-चमत्कारिता और भी बढ़ जाती है।

श्रीराधिकाका मादनाख्य महाभाव ही विभु परमानुराग है, यह राधाप्रेमका एक विशिष्ट रूप है। इस प्रेमका 'आश्रय' हैं श्रीराधिकाजी। श्रीकृष्ण 'विषय' हैं। जिसमें प्रेम होता है और जो प्रेमके साथ सेवा करता है, उसको कहा जाता है प्रेमका आश्रय। और जिसके प्रति प्रेमका प्रयोग किया जाता है, या जिसकी प्रेमके साथ सेवा की जाती है, वह कहलाता है—प्रेमका विषय। श्रीराधिकाजीमें मादनाख्य महाभाव या प्रेम है और वे ही इस प्रेमके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं। अतएव प्रेमका 'आश्रय' हैं—श्रीराधिकाजी और प्रेमके 'विषय' हैं—सेवा स्वीकार करनेवाले श्रीकृष्ण। श्रीराधाके सिवा किसी भी श्रीकृष्ण-प्रेयसीमें इस जातिका परमोत्कृष्ट प्रेम नहीं है। श्रीराधिकाजी ही इस मादनाख्य विभु प्रेमकी एकमात्र अधिकारिणी हैं।

**सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।**
**राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥**

( उ० नी० )

प्रेमके विकासमें स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये कई स्तर हैं। महाभावके भी मोदन और मादन दो भेद हैं।

प्राकृत मन-इन्द्रियको चरितार्थ करनेवाले नीच कामकी तो यहाँ कल्पना ही नहीं है। काम प्राकृत चित्तकी एक वृत्ति है, जो विषयासक्त लोगोंके मनमें प्रकट होती है, जो सदा-सर्वदा केवल 'निजसुख-वाञ्छा' रूप ही होती है तथा जिसमें त्यागरूप पवित्रताका लेश भी नहीं है।

बिषयी-जन-मनमें प्रकट प्राकृत बृत्ति बिसेस।
निजसुख-बांछारूप सो 'काम' न सुचिता-लेस॥

उपर्युक्त स्नेह आदिका संक्षिप्त रूप यह है—

१. प्रेम—

सुद्ध सत्त्वकी बृत्ति जो कृष्ण-सुखेच्छारूप।
त्यागी जन-मनमें उदित 'प्रेम' पवित्र अनूप॥

२. स्नेह—

प्रेम विषय कौं प्राप्त कर द्रवित करै जब चित्त।
'स्नेह' कहावत सोइ तब, प्रेमीजन कौ बित्त॥
बढ़त उष्नता-ज्योति जब घृत पूरन हो दीय।
दरस-लालसा बढ़त त्यौं स्नेह-उदय तें हीय॥

३. मान—

अति नूतन माधुर्य कौ अनुभव जा में होय।
नेह पाइ उत्कर्षता 'मान' कहावत सोय॥
भाव छिपावन हृदय कौ बनै बक्र अरु बाम।
सुख उपजावत स्याम कौ धारि मान मधु नाम॥

४. प्रणय—

ममताकी अति बृद्धि तैं मान पाइ उत्कर्ष।
प्रिय सौं होय अभिन्नता, बढ़त हृदय अति हर्ष॥
प्रान-बुद्धि-मन-देह जब, असन-बसन सब काम।
रहै न प्रिय सौं पृथक् कछु, होत 'प्रनय' तब नाम॥

५. राग—

स्याम-मिलनकी आस में दुःख परम सुख होय।
अमिलन में भासत सकल सुख अति दुखमय सोय॥
प्रनय पाय उत्कर्ष जब या स्थिति पहुँचै जाय।
नाम 'राग' तब धरत सो पावन प्रीति सुभाय॥

६. अनुराग—

प्रतिपल नव दीखत जबै स्याम नित्य-अनुभूत।
नित नव सुंदरतर, सरस, परम मधुर, अति पूत॥
पाय परम उत्कर्षता बढ़त अमित जब राग।
प्रगटत लच्छन सहज अस धरत नाम 'अनुराग'॥

७. भाव—

प्रान त्याग हूँ तैं कठिन दुःख तुच्छ जब होय।
कृष्न-प्राप्ति हित लगत जब मधुर परम सुख सोय॥
स्याम-मिलन अरु स्याम-सुख हित अति मन में चाव।
बढ़त, बढ्यौ अनुराग सोइ धरत नाम सुभ 'भाव'॥

८. महाभाव—

भाव सिखर जब उच्चतम पहुँचत सहजहिं जाय।
'महाभाव' सो मधुरतम परम बिमल मन भाय॥
महाभाव के दो परम स्तर उज्ज्वल सुचि हेम।
'मोदन'-'मादन' नाम धरि प्रगटत पूरन प्रेम॥
महाभाव मादन परम दुर्लभ सहज सुतंत्र।
केवल राधा में प्रगट कबहुँ न कहुँ अन्यत्र॥

विषयभोगोंके त्यागी भगवज्जनके मनमें शुद्ध सात्त्विकी श्रीकृष्ण-सुखेच्छारूप जिस पवित्र अनुपम वृत्तिका उदय होता है, वह 'प्रेम' है।

वह प्रेम अपने विषय ( श्रीकृष्ण ) को पाकर जब चित्तको द्रवित कर देता है, तब प्रेमीजनके उस धनको 'स्नेह' कहा जाता है। दीपक जब घृतसे पूर्ण होता है, तब उसमें जैसे उष्णता और ज्योति बढ़ती है, वैसे ही स्नेहके उदयसे हृदयमें श्रीकृष्णदर्शनकी लालसा बढ़ती है।

जिसमें अत्यन्त नवीन माधुर्यका अनुभव होता है, 'स्नेह' के ऐसे उत्कर्षको 'मान' कहा जाता है। श्रीश्याम-सुन्दरको अधिक सुख देनेके लिये हृदयके भावको छिपाकर जो वक्रता और वामता प्रकट होती है, उसी मधुर स्थितिका नाम 'मान' है।

ममताकी अत्यन्त वृद्धिसे जब मान उत्कर्षको प्राप्त करता है, तब प्रियतमसे अभिन्नता बढ़ जाती है और हृदयमें अत्यन्त हर्ष छा जाता है। इससे प्राण, मन, बुद्धि, शरीर तथा खान-पान, वस्त्राभूषण आदि सभीमें प्रियतमसे कुछ भी पृथक्ता नहीं रह जाती, तब उसका नाम 'प्रणय' होता है।

श्रीकृष्णसे मिलनेकी आशामें जब दुःख ही परम सुख हो जाता है और अमिलनमें सभी सुख अत्यन्त दुःखमय दिखलायी देने लगते हैं—यों प्रणय जब उत्कर्षको प्राप्त होकर इस स्थितिपर पहुँच जाता है, तब सहज ही उस पावन प्रेमका नाम 'राग' होता है।

अब नित्य अनुभूत श्रीकृष्ण पल-पलमें नये दिखायी देते हैं, प्रतिपल जब वे अधिकाधिक अत्यन्त पवित्र, सुन्दर, सरल और परम मधुर दिखायी देते हैं, राग जब परम उत्कर्षको प्राप्त होकर असीम रूपसे बढ़ जाता है, तब जो ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं, वे 'अनुराग' नाम धारण करते हैं।

जब प्राणत्यागसे भी अधिक कठिन दुःख अत्यन्त तुच्छ हो जाता है, बल्कि श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये जब वह परम मधुर तथा परम सुखमय हो जाता है और श्रीकृष्णके मिलनके तथा उनके सुखके लिये जब मनमें अत्यन्त चाव बढ़ जाता है, वह बढ़ा हुआ अनुराग ही शुभ 'भाव' नाम धारण करता है।

यह भाव जब सहज ही उच्चतम स्तरपर पहुँच जाता है, तब उस मधुरतम, परम निर्मल मनभावन भावको 'महाभाव' कहते हैं। इस महाभावके उज्ज्वल पवित्र स्वर्णसदृश 'मोदन' तथा 'मादन' नामक दो सर्वोच्च स्तर हैं, जिनसे पूर्ण प्रेमका प्राकट्य होता है। इनमें 'मादन' नामक महाभाव परम दुर्लभ तथा स्वाभाविक ही स्वतन्त्र है। उसका केवल श्रीराधाजीमें ही प्राकट्य है, अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

उपर्युक्त स्नेहसे मोदनतक सभी स्तर श्रीकृष्णमें और सम्पूर्ण व्रज-सुन्दरियोंमें—मधुर-भावापन्न गोपियोंमें हैं। व्रज-सुन्दरियाँ इन्हीं विभिन्न स्तरोंके प्रेमसे श्रीकृष्णकी नित्य सेवा करती हैं, अतएव श्रीकृष्ण इस प्रेमके 'विषय' हैं; साथ ही प्रेमके ये सारे स्तर श्रीकृष्णमें भी हैं, अतएव श्रीकृष्ण इस प्रेमके 'आश्रय' भी हैं। परंतु मादनाख्य महाभाव श्रीराधामें ही है। अतएव इसका 'आश्रय' एकमात्र वे ही मानी जाती हैं। श्रीकृष्णको राधाजीके द्वारा प्रेमकी सेवा प्राप्त करनेमें जितना सुख मिलता है, श्रीकृष्णको सुखी देखकर उससे करोड़ों-गुना अधिक सुख राधाजीको प्राप्त होता है। इसीलिये

श्रीकृष्ण चाहा करते हैं कि इस प्रेमका मैं 'आश्रय' बनूँ और राधिकाजी 'विषय' बनें।

इसके अतिरिक्त एक बात यह है कि श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी—उनकी सौन्दर्य-माधुरी इतनी मधुरतम, अद्भुत, अनन्त और अतुलनीय है कि न तो उसकी कहीं सीमा है, न कहीं किसी अल्पांशमें भी तुलना है और न उसका पूर्ण आस्वादन ही किसीके लिये सम्भव है—यहाँतक कि सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण स्वयं भी उस अपनी सौन्दर्यमाधुरीका आस्वादन करनेमें समर्थ नहीं हैं। अपने पूर्ण नित्यवर्द्धनशील मादनाख्य महाभावरूप प्रेमके द्वारा एकमात्र श्रीराधा ही उसका नित्य निरन्तर सम्पूर्णास्वादन करती रहती हैं।

यह प्रेमका परमोज्ज्वल तथा परमोत्कृष्ट स्वरूप नित्यानन्त है।

सभी जानते हैं क्षुधा निवृत्त हो जानेपर भोजनमें रुचि या प्रीति नहीं रहती। अथवा यदि भूख पूरी मिटनेके पहले ही भोजन-वस्तु समाप्त हो जाती है तो भोजनकी इच्छा पूर्ण न होनेके कारण भोजनकी एक कष्टमयी उत्कण्ठा बनी रहती है। पर यहाँ ये दोनों बातें नहीं हैं; क्योंकि न तो श्रीराधाकी मादनाख्य महाभावमयी माधुर्यास्वादनमयी स्पृहा ही कभी निवृत्त होती है और न श्रीकृष्णका माधुर्य ही सम्पूर्णरूपसे आस्वादित होकर कभी समाप्त होनेवाला है। श्रीराधाके लिये श्रीकृष्णके माधुर्यास्वादनकी स्पृहा निवृत्त हो जाय, इसकी तो कल्पना भी नहीं है। कारण, प्रेम निवृत्त हो तब कृष्णमाधुर्यास्वादनकी इच्छा निवृत्त हो; सो राधाका प्रेम विभु होनेपर भी प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, अतः प्रतिक्षण ही उसमें श्रीकृष्णके माधुर्यास्वादनकी नित्य-नूतन योग्यता एवं स्पृहा बढ़ती रहती है। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों श्रीराधिकामें श्रीकृष्णके माधुर्यास्वादनके द्वारा आस्वादनका माधुर्य तथा आस्वादनकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती है, त्यों-ही-त्यों श्रीकृष्णका माधुर्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है, उसमें पल-पल नित्य नये-नये माधुर्यका एवं नित्य नयी-नयी माधुर्य-विचित्रताओंका विकास होता रहता है।

श्रीराधिकाजीका काम-गन्धहीन, स्वसुख-वाञ्छा-वासना-कल्पनागन्धसे सर्वथा रहित केवल कृष्ण-सुख-तात्पर्यमय विशुद्ध प्रेम निर्मल दिव्य दर्पणके समान है। जिसमें समीपकी वस्तुका प्रतिबिम्ब दिखायी दे, उसे 'दर्पण' कहते हैं। दर्पणमें यह एक विशेषता है कि किसी ज्योतिर्मयी—चमकदार वस्तुके सामने आनेपर दर्पण भी ज्योतिर्मय या चमकदार बन जाता है और दर्पणमें प्रतिफलित ज्योति—दर्पणपर पड़ी हुई चमक उस ज्योतिर्मय—चमकदार वस्तुपर पड़कर उसे और भी अधिक ज्योतिर्मय—चमकदार बना देती है। वैसे ही निर्मल दर्पणके सदृश श्रीराधाका विशुद्ध महाभावरूप प्रेम श्रीकृष्णके परमोज्ज्वल माधुर्यको ग्रहण करता है। निर्मल दर्पणमें जैसे वस्तुका अविकल प्रतिबिम्ब आ जाता है, उसमें कहीं भी तनिक-सी भी त्रुटि नहीं दीखती, वैसे ही स्व-सुख-वाञ्छाहीन या कामगन्धरहित विशुद्ध राधा-प्रेम भी श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण माधुरीका पूर्णरूपसे आस्वादन करता है और श्रीकृष्ण-माधुरीकी जगमगाती ज्योति श्रीराधाप्रेमरूप दर्पणको और भी अधिक स्वच्छ एवं ज्योतिर्मय बना देती है। इसी प्रकार श्रीराधाप्रेमरूप दर्पणमें प्रतिफलित ज्योति अनवरत रूपसे श्रीकृष्णके माधुर्यपर पड़ती एवं उसे और भी अधिक उज्ज्वल ज्योतिर्मय बनाती रहती है। यों श्रीकृष्णके माधुर्यसे श्रीराधाका प्रेम बढ़ता रहता है और श्रीराधाप्रेमसे श्रीकृष्णका माधुर्य बढ़ता रहता है। दोनों ही मानो होड़ लगाकर एक-दूसरेको परास्त करनेके लिये उत्तरोत्तर प्रबलशक्ति होते रहते हैं, पर हारता कोई भी नहीं!

प्रश्न हो सकता है कि 'श्रीकृष्ण तो सबके सामने एक-से ही हैं; फिर क्या कारण है कि श्रीकृष्णके माधुर्यका श्रीराधा ही पूर्णतया आस्वादन करती हैं, सब लोग नहीं कर पाते?' इसका एकमात्र कारण है—श्रीराधाका प्रेम ही पूर्णतमरूपसे विकसित है, दूसरोंका नहीं है।

वस्तुके सामने होनेसे ही वह सबको दिखायी दे और सबको एक-सी ही दिखायी दे, यह कोई नियम नहीं है। प्रथम तो जिसकी दृष्टिशक्ति होती है, वही देख सकता है, अंधा नहीं देख सकता। वह सुनता-सूँघता है, पर देख नहीं पाता। फिर जिनके दृष्टिशक्ति है, वे भी दृष्टिशक्तिकी न्यूनाधिकताके अनुसार वस्तुको देख सकते हैं। आकाशमें चन्द्रमाका उदय होनेसे ही वह अंधेको भी दिखायी देगा या हीनदृष्टिवालेको भी पूर्ण दृष्टिवालेकी भाँति सुस्पष्ट दिखायी देगा—यह आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार जिसमें श्रीकृष्णके प्रति निर्मल मधुर-प्रेम होगा, वही श्रीकृष्णके माधुर्यका आस्वादन कर सकेगा। ऐश्वर्योपासकको माधुर्य नहीं दीखेगा। फिर मधुर प्रेमवालोंमें भी जिसका जिस मात्रामें प्रेम होगा, उसी मात्रामें वह माधुर्यका आस्वादन करेगा। अन्यान्य व्रजवासी ही नहीं, मधुरभावमयी श्रीगोपाङ्गनाओंमें भी सबका

श्रीकृष्णके प्रति एक-सा प्रेम नहीं है, एवं श्रीराधा-सदृश पूर्णतम प्रेम तो है ही नहीं। इसलिये वे लोग अपने प्रेमके अनुसार ही श्रीकृष्णका माधुर्यास्वादन कर सकती हैं। श्रीराधाकी भाँति पूर्णतम रूपसे श्रीकृष्ण-माधुर्यका आस्वादन कभी न कोई कर सका है और न कर ही सकेगा; क्योंकि जैसे श्रीकृष्ण 'स्वयं भगवान्' हैं, वैसे ही श्रीराधा ही सर्वशक्तिगरीयसी 'स्वयं भगवत्स्वरूपा' शक्ति हैं। अतः उन्हींमें प्रेमका अचिन्त्यानन्त पूर्ण प्रकाश है ('राधायामेव यः सदा')। इसीसे केवल वे ही पूर्ण माधुर्यास्वादन कर पाती हैं और उनका यह बढ़ता हुआ माधुर्यास्वादन सहज ही प्रतिक्षण श्रीकृष्ण-माधुरीको बढ़ाता ही रहता है।

इसी प्रकार सुखको लेकर भी दोनोंमें परस्पर होड़ लगी रहती है। अपनी सेवासे जब श्रीराधाजी प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी देखती हैं, तब उनका सुख श्रीकृष्णके सुखसे करोड़ों गुना अधिक बढ़ जाता है और श्रीकृष्ण जब प्रियतमा श्रीराधाको इतना महान् सुखमय देखते हैं, तब उनके अनन्त अगाध सुखसमुद्रमें बाढ़ आ जाती है। पर श्रीराधाके इस सुखानुभवमें उनकी अपनी सुख-कामना-कल्पनाका भी लेश नहीं है। श्रीराधाजी यह सुखानुभव—सुखोपभोग करती हैं—केवल श्रीकृष्ण-सुखके लिये ही।

इस एकमात्र परम त्यागमय, परम समर्पणमय, परम रसमय, परम प्रियतम-सुख-तात्पर्यमय विशुद्ध प्रेमका जिसके जीवनमें आत्यन्तिक प्राकट्य है, वही गोपी है। और इन समस्त भावोंका जो मूल उत्स हैं, जिनके स्वरूपभूत परम महाभावसे ही इन समस्त भावोंका उदय, उत्तरोत्तर विकास एवं नित्य आस्वादन सम्भव है, जो श्रीकृष्ण-प्रेयसी-जनोचित गुणोंका उद्भवस्थान है, जिनकी दिव्य गुणावलि ही समस्त विशुद्ध प्रेममयी प्रेयसियोंके मधुर निर्मल सद्गुणोंकी मूल है, जिनके कारण ही परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण इन परम मधुर रसमयी भावलीलाओंमें सब कुछ भूलकर नित्य निरन्तर लीलायमान रहते हैं, जिनकी छायारूपी गोपियोंकी चरणधूलि प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े भगवत्स्वरूप महान् देवता, ज्ञानी-विज्ञानी, ऋषि-मुनि नित्य लालायित रहते हैं, साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य परम ज्ञानसम्पन्न श्रीउद्धवजी जिनके पद-रज-कणके लिये जड लता-गुल्मौषधि बनना चाहते हैं और जिनकी रूप-गुण-माधुरीपर सर्वाकर्षक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण नित्य आकर्षित रहते हैं—वे हैं श्रीराधाजी!

श्रीराधाजीका क्या स्वरूप है और श्रीकृष्णके साथ उनका क्या सम्बन्ध है, इसे संक्षेपमें इस प्रकार सोचिये-देखिये—

कृष्णमना, श्रीकृष्ण-मति, कृष्णजीवना शुद्ध।
कृष्णेन्द्रिया, सुचारु शुभ, कृष्णप्रिया विशुद्ध॥
कृष्ण-कथा मुखमें सदा, कृष्ण-नाम-गुण-गान।
कृष्ण सुभूषण श्रवण शुचि, कृष्ण-गुण-निरत कान॥
कृष्ण-रूप-मधु नेत्रमें, नासा कृष्ण-सुगन्ध।
कृष्ण-सुधा-रस रसमयी रसना नित निर्बन्ध॥
कृष्ण-स्पर्श संलग्न नित अंग बिना व्यवधान।
कृष्ण-मधुर-रस कर रहा मन अतृप्त नित पान॥
नित्य कराती श्यामको मधुर अमिय रस पान।
नित्य पूर्ण करती सभी श्याम-काम रख ध्यान॥
श्याम-प्रेम शुचि रत्नकी अमित मनोहर खान।
श्याम-सुखकरण गुण अमित अनुपम नित्य निधान॥
भीतर बाहर पूर्ण नित सुन्दर श्याम सुजान।
दीख रहा सब श्याममय, नित नव मधुर महान॥
विश्वविमोहन श्यामकी मनमोहनि रसधाम।
श्याम-चित्त-उन्मादिनी श्यामा दिव्य ललाम॥

श्रीराधाके स्वरूपगुण अचिन्त्यानन्त हैं। उनका वर्णन तो दूर रहा, चिन्तन भी असम्भव है। यह तो केवल एक बाह्य संकेतमात्र है और यह भी उनकी कृपाका ही सुन्दर परिणाम है।

पर वस्तुतः जितने भी महान् गुण, भावोंके अवान्तर भेद तथा भावोंके परमोच्च स्तर आदि हैं, जिनका किसी प्रकार भी वाणीके द्वारा वर्णन अथवा चित्तके द्वारा चिन्तन हुआ है, हो सकता है, नित्याचिन्त्य-भावमयी श्रीराधा उन सभी भावोंसे अतीत निज महिमामें नित्य स्थित हैं। ये सब भाव आदि शाखाचन्द्र-न्यायसे उनका संकेतमात्र करते हैं।

जितने सब हैं भाव विलक्षण एक-एकसे उच्च उदार।
वे सब अति अभ्यन्तर होकर भी हैं बाह्य सरस व्यवहार॥
हैं वे परमादर्श पुण्यतम प्रेमराज्यके भाव महान।
मिलते हैं उनसे प्रेमास्पद श्रेष्ठ रूपमें श्रीभगवान॥
पर राधा स्वरूपतः बँधी न उनसे किंचित् कभी कहीं।
एक श्यामके सिवा तत्त्वतः राधामें कुछ और नहीं॥
राधा नित्य श्यामकी मूरति, नहीं अन्य कुछ भावाभाव।
राधा श्याम, श्याम राधा हैं, अन्य तत्त्वका नित्य अभाव॥

'जितने भी ये प्रेमराज्यके एक-से-एक उच्च, विलक्षण

और उदार भाव हैं, वे सभी अत्यन्त आभ्यन्तरिक होनेपर भी बाह्यरसपूर्ण व्यवहार ही हैं। निश्चय ही वे परम आदर्श हैं, पवित्रतम हैं और महान् हैं। उन भावोंके द्वारा प्रेमास्पद श्रीभगवान् प्रियतमके रूपमें प्राप्त हो सकते हैं; परंतु श्रीराधाजी स्वरूपतः उन भावोंमें कभी किंचित् भी बँधी नहीं हैं। एक श्यामसुन्दरके अतिरिक्त तत्त्वतः श्रीराधामें और कुछ है ही नहीं। श्रीराधा नित्य श्रीश्यामसुन्दर हैं और श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधा हैं, उनमें अन्य किसी भी तत्त्वका नित्य अभाव है।'

लीलाराज्यमें भी ये दोनों ही एक-दूसरेके प्रेमी प्रेमास्पद या आश्रय और विषय हैं। अनिर्वचनीय अचिन्त्य है इनकी रूपलीला-माधुरीका तत्त्व।

'स्वयं भगवान्' श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता नित्यशक्ति, नित्य दिव्य रासेश्वरी, नित्य निकुञ्जेश्वरी, श्रीकृष्णप्राणा, श्रीकृष्ण-आत्मा और साक्षात् श्रीकृष्ण-स्वरूपा इन्हीं श्रीराधाजीके मधुर मनोहर मङ्गलमय दिव्य अवतारका आज परम पुण्य दिवस है। हमलोग सभी धन्य हैं, जो इस घोर काम-कलुष-मय कलियुगके कलङ्कपूर्ण परंतु कल्पनातीत परमोत्कृष्ट परमोज्ज्वल कालमें परम और चरम त्यागकी प्रत्यक्ष मूर्ति श्रीराधिकाजीके पुण्य-स्मरण करनेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं। श्रीराधाजीकी बात तो बहुत दूर, उनकी किंकरी किसी क्षुद्र-से-क्षुद्र मञ्जरीके त्यागमय जीवनका जरा-सा प्रकाश भी हमारे जीवनपर पड़ जाय तो हम धन्यजीवन—सफलजन्म हो सकते हैं। प्रार्थना कीजिये—

निन्द्य नीच पामर परम, इन्द्रिय-सुखके दास।  
करते निसिदिन नरकमय विषय-समुद्र निवास॥  
नरक-कीट ज्यों नरकमें मूढ़ मानता मोद।  
भोग-नरकमें पड़े हम त्यों कर रहे विनोद॥  
नहीं दिव्य रस-कल्पना, नहीं त्यागका भाव।  
कुरस, विरस, नित अरसका दुखमय मनमें चाव॥  
हे राधे रासेश्वरी! रसकी पूर्ण निधान।  
हे महान् महिमामयी! अमित श्याम-सुख-खान॥  
पाप-ताप-हारिणि, हरणि सत्वर सभी अनर्थ।  
परम दिव्य रसदायिनी पञ्चम शुचि पुरुषार्थ॥  
यद्यपि हैं सब भाँति हम अति अयोग्य, अघबुद्धि।  
सहज कृपामयि! कीजिये पामर जनकी शुद्धि॥  
अति उदार अब दीजिये हमको यह वरदान।  
मिले मञ्जरीका हमें दासी-दासी-स्थान॥

भजामि राधामरविन्दनेत्रां  
स्मरामि राधां मधुरस्मितास्याम्।  
वदामि राधां करुणाभरार्द्रां  
ततो ममान्यास्ति गतिर्न कापि॥

बोलो श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा श्रीराधारानीकी जय जय जय!!

# एक साधकके उद्गार

मेरे प्रभो! वह दिन कब होगा जब मेरा मन संसार--संसारके संग और सांसारिक भोगोंसे सर्वथा हट जायगा। जब संसार मेरे लिये रह ही नहीं जायगा। मेरा मन-मधुकर सदा-सर्वदा और सर्वथा केवल तुम्हारे पद-पद्मोंपर ही मँडराता रहेगा। उन्हींके मधुर मकरन्द रसका पान करनेमें प्रमत्त रहेगा।

अभी संसारके भोगपदार्थोंमें सुखबुद्धि बनी है। उनकी दुःखमयता और अनित्यताका प्रत्यक्ष अनुभव होनेपर भी उनके प्रति मनमें विराग नहीं होता। प्रभो! मेरी इस मोहनिशाका कब नाश होगा। कब तुम्हारे नित्य निर्मल प्रेम-भास्करके पावन प्रकाशसे मेरा चिरान्धकार सदाके लिये नष्ट हो जायगा।

जिन प्राणी-पदार्थोंको मैं मेरा मानता-कहता हूँ, प्रभो! उनमें कौन मेरा है जो मेरे साथ आया है और साथ जायगा। मैं क्या कहूँ। अपनी पुरुषार्थहीनताके कारण मैं सर्वथा असमर्थ हो रहा हूँ। मेरे पुरुषार्थसे कुछ भी नहीं होगा। यह बात मेरी समझमें आ गयी है, अब तो तुम्हीं दया करो और अपने सहज सुहृद्भावसे मुझे अपनाकर मेरे मोह-अरण्यमें आग लगा दो। मैं दीन-हीन हूँ—पर हूँ तुम्हारा ही। तुम्हीं-को सारी लाज है। तुम जब जैसे जो चाहो करो—पर मुझे सदा अपनाये रक्खो। मुझे यह अनुभव होता रहे—मैं तुम्हारा हूँ।

# त्रिजटाने स्वप्न देखा

( लेखक—श्रीबलरामजी शास्त्री एम्० ए०, ज्योतिषाचार्य, साहित्यरत्न )

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिजीने अपने आदिकाव्यमें सुन्दर और वैज्ञानिक ढंगसे कई स्थलोंपर स्वप्नविज्ञानका प्रसंग उपस्थित किया है। स्वप्नविज्ञानका सम्बन्ध मनोविज्ञानसे होते हुए ही मानवके शरीर-विज्ञानसे भी है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—इन चार अवस्थाओंमें, स्वप्नावस्था अपना विशेष महत्त्व रखती है। भारतीय फलित ज्योतिषके आचार्योंने स्वप्नके ऊपर कई प्रकारसे विचार किया है। यद्यपि आधुनिक मनोवैज्ञानिक स्वप्नपर विचार करना अनावश्यक समझते हैं। भारतीय फलित ज्योतिषके आचार्य ही नहीं अपितु आयुर्वेदके आचार्योंने भी स्वप्नविज्ञानसे आयुर्वेदविज्ञानका सम्बन्ध स्थापित किया है। पहले समस्त एशिया एवं यूरोपके कतिपय देशोंमें स्वप्नसे भविष्य-फलपर विचारकी परम्परा प्रचलित थी। चरकाचार्य और सुश्रुतके प्रणेताने रोगियोंकी मृत्युके अन्यान्य कारणोंमें लक्षणोंकी पहचान करते समय रोगियोंके स्वप्नसे भी फल विचार करनेका उल्लेख किया है। प्रस्तुत प्रसंगमें मैं स्वप्न-विज्ञानका इतिहास नहीं उपस्थित करना चाहता। इस प्रसंगमें आदिकविद्वारा उल्लिखित 'त्रिजटाके स्वप्न'का विवेचन ही अभीष्ट है।

रावणने जब सीतादेवीको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये सभी उपायोंसे हार मान ली, तब उसने सीताजीके पास कुछ राक्षसियोंको उन्हें डराने-धमकानेके लिये रक्खा। राक्षसियोंकी उस जमातमें 'एकजटा' 'त्रिजटा' आदि कई राक्षसियाँ थीं। उनमें त्रिजटा नामक एक राक्षसीने एक सपना देखा। त्रिजटाके उस स्वप्नका वर्णन आदिकविने विस्तारके साथ किया है। महर्षि वाल्मीकिजीने त्रिजटाके उस स्वप्नसे शुभ और अशुभ फलोंका जो विवेचन किया है, उसमें भारतीय फलित ज्योतिषका विशेष सहारा लिया गया है। भारतके प्राचीन फलितज्ञोंमें आचार्य देवल, आचार्य वाराह मिहिर, चरकाचार्य, सुश्रुतकार आदिने भी स्वप्न-विज्ञानके ऊपर विस्तारसे लिखा है। अग्निपुराण, मार्कण्डेयपुराण, विष्णुधर्मोत्तर-पुराण एवं कालावलीमें जिस स्वप्नविचारकी चर्चा है, उसका समर्थन आदिकवि वाल्मीकिजीके कथनसे हो जाता है। यदि तथोक्त पुराणों या ग्रन्थोंकी रचना कालके समयसे और आदिकविद्वारा रचित आदिकाव्य वाल्मीकि-रामायणसे तुलना की जायगी तो आदिकविका समय अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होगा। आदिकवि महाकवि थे। वे समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता थे, तत्त्वज्ञानी थे, योगी थे, सिद्धसंत थे, युगद्रष्टा थे, युगस्रष्टा थे और उन्हें ज्योतिष-विज्ञानका भी पूरा ज्ञान था। स्वप्न-विचारमें आदिकविने जिस सिद्धान्तको अपनाया था, वह सर्वमान्य सिद्धान्त था। उसी सिद्धान्तको भारतीय ज्योतिषी मानते आये हैं। त्रिजटाने जो स्वप्न देखा, उसका फल दोनों पक्षों ( श्रीराम और रावण ) के ऊपर शुभ और अशुभके रूपमें घटित हुआ। शुभ फल श्रीरामके लिये और अशुभ फल रावणके लिये घटित हुए थे। त्रिजटा पढ़ी-लिखी राक्षसी थी। स्वप्न-विचारका उसे पूर्ण ज्ञान था। जिस समय सीताजीको राक्षसियोंका समूह डरा-धमका रहा था, उसी समय त्रिजटाने सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहा—

**स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।**
**राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या जयाय च॥**

( वाल्मी० सुन्दरकाण्ड )

आज मैंने जो सपना देखा है, उससे राक्षसोंका अभाव होगा और इस सीताके पति श्रीरामचन्द्रजीकी जीत होगी। मेरा स्वप्न भयानक और रोमाञ्चित करनेवाला था। त्रिजटाके स्वप्नका विवरण सुनते ही सभी राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं। वे सीताको डराना छोड़कर पृथक् हो गयीं। इस प्रसंगसे यह भी सिद्ध होता है कि उस युगमें नास्तिक राक्षसजनतामें भी स्वप्न-विचारकी परम्परा थी। त्रिजटाके स्वप्नमें श्रीरामके प्रति शुभ फलोंके जो संकेत थे वे निम्न प्रकार हैं। महात्मा तुलसीदासजीने भी इस प्रसंगको अत्यन्त संक्षेपसे लिखा है—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। रामचरन रति निपुन बिबेका॥
सबहीं बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गए दिन चारी॥

आदिकविने त्रिजटाके स्वप्नको श्रीरामके पक्षमें बृहद्रूपमें उपस्थित किया है। श्रीरामचन्द्र स्वच्छ वस्त्र और माला

धारण किये, हाथीदाँतके बने स्वच्छ धवल विमानपर बैठकर आकाशमार्गसे लंकामें आये हैं। उस विमानमें हजार हंस जुते हैं। सीताजी भी स्वच्छ वस्त्र पहिने क्षीरसागरसे घिरे धवल पर्वतपर बैठी हैं। जिस प्रकार सूर्यसे प्रभा निकलती है और पुनः सूर्यमें समा जाती है, उसी प्रकार सीताजी श्रीरामचन्द्रजी-से मिलीं। चार दाँतवाले ऊँचे हाथीपर श्रीरामचन्द्रजी धवल वस्त्र पहने बैठे हैं। पुनः श्रीरामचन्द्रजी सूर्यके समान प्रकाश करते हुए सीताजीके पास आये। इस प्रकार सीताजी भी अपने पतिकी गोदसे उस आकाशमें स्थित हाथीके कंधेपर बैठ गयीं। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीको लेकर वह हाथी लंकामें आया। लंकामें पहुँचनेपर वे तीनों व्यक्ति हाथीसे उतरे। आठ बैलोंसे जुता एक धवल रथ भी उनके साथ था। इसके पश्चात् धवल वस्त्र, धवल माला धारण किये श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सूर्यके समान पुष्पकविमानपर चढ़कर उत्तर दिशा-की ओर गये। संक्षेपमें त्रिजटाके स्वप्नमें श्रीरामके पक्षमें यह शुभ स्वप्न था। त्रिजटाके स्वप्नमें विभीषणके लिये भी शुभ संकेत थे। स्वप्नमें भातके अतिरिक्त समस्त धवल वस्तुओंका दर्शन शुभद माना गया है। स्वप्नमें हाथीका दर्शन भी शुभद माना गया है। स्वप्नमें उत्तर दिशाकी यात्रा भी शुभद मानी गयी है। त्रिजटाके स्वप्नमें उल्लेख है कि भगवान् श्रीराम धवल माला धारण किये हुए थे।

शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः।
आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम्॥

महर्षि वाल्मीकिजीके इस कथनकी पुष्टि विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके निम्न कथनसे हो जाती है।

सशुक्लमाल्यधारित्वं शुक्लाम्बरधारिता।
(विष्णुधर्मोत्तर)

त्रिजटाके स्वप्नमें भगवान् श्रीराम हाथीपर सवार देखे गये। सीताजी शुक्ल वस्त्र पहने धवल पर्वतपर बैठी देखी गयीं। महर्षिके इस कथनकी भी पुष्टि विष्णुधर्मोत्तरपुराणके निम्न कथनसे हो जाती है।

शैलप्रासादनागाश्ववृषमारोहणं हितम्।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च तथा द्विज॥
(विष्णुधर्मोत्तर०)

त्रिजटाने अपने स्वप्नमें देखा सीताजी अपने हाथोंसे सूर्य और चन्द्रमण्डलको सँवार रही हैं।

चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टौ पाणिना परिमार्जती।
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः॥
(वाल्मी० सुन्दरकाण्ड)

'विष्णुधर्मोत्तरपुराण'के उदाहरणसे भी ताराओं एवं सूर्य या चन्द्रमण्डलका परिमार्जन शुभद माना गया है।

'चन्द्रताराग्रसनं परिमार्जनमेव च।' (विष्णुधर्मो०)

त्रिजटाके स्वप्नका दूसरा भाग रावणके लिये अशुभकर था। विभीषणके लिये शुभद था। त्रिजटाने अपने स्वप्नके उस अंशको भी सुनाया। 'रावण सिर मुँड़ाकर तेल लगाये, लाल वस्त्र पहने, मद्य पान किये, करीरकी माला पहने पुष्पक विमानसे नीचे गिर रहा है। सिर मुँड़ाये, काला वस्त्र पहने हुए रावणको एक स्त्री खींच रही है। रावण लाल पुष्पोंकी माला पहने, लाल चन्दन लगाये, गधोंके रथपर सवार होकर दक्षिण दिशाकी ओर चला गया है। रावण तेल पान करके नाच रहा है। रावण मस्तक नीचे किये गिर पड़ा है। रावण गधोंसे डरकर पागलोंकी भाँति उठकर दुर्वचन बोलने लगा।' त्रिजटा-ने पुनः स्वप्नमें देखा 'लाल वस्त्र पहने एक काली स्त्री अपने शरीरमें कीचड़ पोतकर रावणके गलेमें फंदा डालकर उसे दक्षिण दिशाकी ओर घसीट रही है। रावणके सभी लड़के तेल लगाये हैं और सिर मुँड़ाये हैं। रावण सूअरपर, मेघनाद शिशुमारपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर सवार होकर दक्षिण दिशा-में चले गये। स्वप्नमें तेलका मर्दन महान् अशुभ माना गया है। स्वप्नमें लाल वर्णके सभी पदार्थ अशुभ माने गये हैं। लाल वस्त्र पहनना, लाल चन्दनका लेप और लाल माला धारण करना आदिका दर्शन स्वप्नमें अशुभ फलके द्योतक हैं। स्वप्नमें सिर मुँड़ाना, गधेकी सवारी, दक्षिण दिशाकी यात्रा आदि भी महान् अशुभसूचक हैं। आदिकविने लिखा है—

रावणश्च मया दृष्टः क्षितौ तैलसमुक्षितः।
रक्तवासा पिबन् मत्तः करवीरकृतस्रजः॥
रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः।
पिबंस्तैलं हसन् नृत्यन् भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः॥
पतितोऽवाक्शिरा भूमौ गर्दभाद् भयमोहितः।
सहसोत्थाय सम्भ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः॥
(वाल्मीकि० सुन्दरकाण्ड)

कालावलीमें लिखा है कि स्वप्नमें लालचन्दनका लेप, लाल वस्त्र और लाल माला धारण करना, तैलका मर्दन करना महान् अशुभ है।

रक्तगन्धप्रलिप्ताङ्गो रक्तमाल्योपशोभितः।
तैलाभ्यक्तोऽतिभीतश्च मुण्डितो रक्तवस्त्रधृक्॥

स्वप्नमें ऊँट और गधेकी सवारी, दक्षिण दिशाकी यात्रा आदिका फल मृत्युकारक माना गया है। चरकाचार्यने भी लिखा है—

श्वभिरुष्ट्रैः खरैर्वापि याति यो दक्षिणां दिशम्।

स्वप्नमें काली स्त्रीद्वारा दक्षिण दिशामें खींचा जाना भी महान् अशुभ माना गया है। सुश्रुतके रचयिताने भी लिखा है—

कृष्णाम्बरधरा नारी हसन्ती मुक्तमूर्धजा।
यं चापकर्षति बद्ध्वा स्त्री नृत्यति दक्षिणामुखम्॥

स्वप्नमें नंगा होना या नंगे मानवका दर्शन, हँसना, मृत्युकी सूचना माने गये हैं। वायुपुराणके कथनसे इसका समर्थन होता है—

नग्नं श्रवणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम्।
(वायुपुराण)

आचार्य देवलने लिखा है कि स्वप्नमें लाल वस्त्र एवं लाल चन्दनके उपयोग, दक्षिण दिशाकी यात्रा, ऊँटकी सवारी आदिके दर्शनसे तीन माहके भीतर मृत्यु होती है। या अत्यन्त संनिकट कालमें मृत्युतुल्य कष्ट प्राप्त होता है। त्रिजटाके स्वप्नोंमें जो प्रथम दुःस्वप्न हुए वे रावणके लिये अशुभ फलके द्योतक थे। उत्तम स्वप्न श्रीरामके पक्षमें विजय दिलानेवाले सिद्ध हुए। त्रिजटाके सपनेमें दूसरा खण्ड भी था। दूसरे खण्डमें जो शुभसूचक लक्षण थे वे विभीषणके लिये शुभदायक सिद्ध हुए। दुःस्वप्न कुम्भकर्णके लिये एवं अन्यान्य राक्षस-परिवारके लिये मृत्युदायक सिद्ध हुए। त्रिजटाने स्वप्नमें देखा कि विभीषण श्वेत छत्र लेकर बैठे हैं। विभीषण स्वच्छ माला पहने, स्वच्छ वस्त्र धारण किये धवल वर्णका चन्दन लगाये हैं। विभीषण चार दाँतोंवाले हाथीपर सवार हैं। विभीषणके साथ उनके चार मन्त्री भी हैं। विभीषण विमानपर बैठकर अन्तरिक्षकी यात्रा कर रहे हैं। त्रिजटाके स्वप्नमें कुम्भकर्णके लिये जो अपशकुन हुए, उनका उल्लेख करते हुए आदिकविने लिखा है—कुम्भकर्ण आदि राक्षस लाल वस्त्र पहनकर और लाल माला धारण करके खूब तैल पान किये हुए हैं। लंकाकी चहारदीवारी ढह रही है। हाथी-घोड़े और रथोंसे भरी लंकापुरी समुद्रमें डूब गयी है। लंकापुरीको एक वानरने बुरी तरह जला दिया है। राक्षसोंकी स्त्रियाँ चिल्ला रही हैं। वे स्त्रियाँ लाल वस्त्र धारण करके जली लंकाकी राखमें प्रवेश कर गयीं। कुम्भकर्ण आदि बड़े-बड़े राक्षस लाल कपड़े पहनकर गोबरके तालाबमें घुस गये। इस प्रकार त्रिजटाके स्वप्नमें गोबरके तालाबमें घुसना, एक वानरका लंका जलाना, स्त्रियोंका चिल्लाना, तेलपान करके हँसना आदि भयानक कुशकुन माने गये हैं। चरकाचार्यने भी लिखा है—गंदे पानी या कीचड़में या कुएँमें कोई गिरे तो महान् अशुभ फल प्राप्त होते हैं या शीघ्र ही मृत्यु होती है। त्रिजटाके स्वप्नमें लंकाका जलना और लंकाका समुद्रमें डूबना भी उल्लिखित है। मार्कण्डेयपुराणमें भी नगरका जलना या पानीमें डूबना अशुभसूचक बताया गया है।

स्वप्नेऽग्निप्रवेशस्तु न च निष्क्रमते पुनः।
यमप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवनम्॥
(मार्कण्डेयपुराण)

महाकवि संत तुलसीदासजीने जो त्रिजटाके स्वप्नका उल्लेख रामचरितमानसमें किया है, उसमें लंकाका जलना, रावणका गधेपर सवार होना, रावणका सिर मुँड़ाना, रावण और कुम्भकर्णकी भुजाओंका कटना एवं दक्षिण दिशाकी यात्रा आदि अपशकुनसूचक हैं। वे सब अपशकुन रावणके पक्षमें सिद्ध हुए।

'नगर फिरी रघुबीर दोहाई'

इतनेसे ही श्रीरामकी विजय सिद्ध हुई।

'लंका मनहु बिभीषन पाई'

इतने संकेतसे संत तुलसीदासजीने श्रीराम और विभीषणके लिये शुभ संकेत मान लिया। अग्निपुराणमें त्रिजटाके स्वप्नकी चर्चा विशदरूपमें प्राप्त होती है। अग्निपुराणमें उल्लेख प्राप्त होता है—रावण पुष्पक विमानसे गिर पड़ा, रावणको स्त्रियाँ घसीट रही हैं। रावण लाल वस्त्र पहनकर दक्षिण दिशाकी ओर चला गया। रावण गधेके रथपर सवार होकर दक्षिण दिशामें चला गया। रावणके परिवारके अन्य लोग सूअर, बकरे, गधेके रथोंपर सवार होकर दक्षिण दिशामें गये।

विमानात् पुष्पकादधो रावणः पतितो मया।
कृष्यमाणः स्त्रिया दृष्टो मुण्डो रक्ताम्बरो हसन्॥
रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः।
प्रयातो दक्षिणामाशां नागतः पुनरेव हि॥
वराहे तु समारूढः छागले गर्दभे तथा।
(अग्निपुराण)

अग्निपुराणमें 'त्रिजटाके स्वप्न' प्रसंगमें आदि काव्यका ही अनुकरण है। उसी प्रकरणमें लिखा है कि लंकाकी स्त्रियाँ

तेल पीकर भयानक अट्टहास करती हुई लंकापुरीके साथ समुद्रमें डूब गयीं। इन स्वप्न-विचार-प्रकरणोंमें स्वप्नकी फल-प्राप्तिकी अवधिका भी उल्लेख है।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥

—संत तुलसीदास

'दिन चारी'से केवल चार दिनका तात्पर्य नहीं होता। साधारणतया बातचीतके सिलसिलेमें लोग यह कह देते हैं—'यह कार्य तीन-चार दिनमें हो जायगा।' उसी प्रकार त्रिजटाके कथनका भी अर्थ समझना चाहिये। त्रिजटाके स्वप्नका कुछ फल तो तुरंत घट गया। हनुमान्‌जीने लंकाको जलाया, रावणके कई सेनापति भी मारे गये। महर्षि वाल्मीकिजीके कथनसे प्रतीत होता है कि त्रिजटाने रात्रिके अन्तिम प्रहरमें स्वप्न देखा था। स्वप्न-विचारसे रात्रिके अन्तिम प्रहरमें देखा गया स्वप्न प्रायः शीघ्र फल देनेवाला कहा जाता है। आचार्य वाराह मिहिरके कथनसे रात्रिके प्रथम प्रहरमें देखा गया स्वप्न एक वर्षमें फल देता है। दूसरे प्रहरमें देखा गया छः मासमें, तीसरे प्रहरमें देखा गया तीन मासके भीतर और चौथे प्रहरमें अर्थात् रात्रिके अन्तिम प्रहरमें देखा गया स्वप्न तुरंत फल देता है। स्वप्न कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने देखे तो दूसरेको फल प्राप्त करानेवाले होते हैं और दूसरोंके देखे अपनेको फल देनेवाले होते हैं। इस प्रकार ग्रन्थोंमें स्वप्नोंका फलादेश उल्लिखित है।

# आशौच-निर्णय

## [ मरणसम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें ]

( लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य )

( १ ) मृतक पुरुषके यदि कई पुत्र हों तो उनमें ज्येष्ठ पुत्रको ही उसके दाह और दशगात्रादि करनेका अधिकार है। पिताकी मृत्युके समय यदि ज्येष्ठ पुत्र ग्रामान्तर गया हो और वह उपस्थित न हो तो उससे छोटा पुत्र केवल 'दाह' और 'दशगात्र' कर सकता है, सपिण्डन नहीं कर सकता। सपिण्डनका अधिकार केवल ज्येष्ठ पुत्रको ही है। एकादशाहादि सपिण्डन करनेके लिये परदेश गये हुए ज्येष्ठ पुत्रकी कम-से-कम एक वर्षतक अवश्य प्रतीक्षा करनी चाहिये।

( २ ) औरस पुत्रका 'मुण्डन' हो गया हो, तो वह समन्त्रक अपने माता-पिताका दाहादि कर्म कर सकता है। यदि उसका 'मुण्डन' न हुआ हो और वह तीन वर्षकी अवस्थासे अधिक हो गया हो, तो भी वह दाहादि कर्म कर सकता है। यदि वह किसी कारण दशगात्रादि करनेमें असमर्थ हो तो उसे दाह ( अग्निदान ) अवश्य ही करना चाहिये। शेष दशगात्रादि कर्म दूसरे अधिकारी भी कर सकते हैं।

( ३ ) मृतक पुरुषके यदि औरस पुत्र न हो और यदि उसने 'दत्तक' पुत्र बना लिया हो तो उसको भी दाहादि कर्म करनेका अधिकार है।

( ४ ) दत्तक पुत्रका यदि 'उपनयन' हुआ हो तो वह अपने माता-पिताका दाहादि कर्म कर सकता है और यदि उसका 'उपनयन' न हुआ हो तो वह अपने माता-पिताका दाहादि नहीं कर सकता।

( ५ ) मृतक पुरुषके यदि औरस पुत्र और दत्तक पुत्र न हों ( मर चुके हों ) तो उनके पुत्र अर्थात् पौत्र दाह कर सकते हैं। पौत्र भी न हो तो प्रपौत्र और प्रपौत्र भी न हो तो मृतककी धर्मपत्नी ( विवाहिता पत्नी ) दाहादि कर्म कर सकती है—

'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्।'

मृतकके यदि धर्मपत्नी भी न हो ( मर चुकी हो ) तो मृतकका छोटा भाई, वह भी न हो तो उसका ज्येष्ठ भाई, वह भी न हो तो भाईका पुत्र दाहादि कर्म कर सकता है। भाईका पुत्र भी न हो तो अन्य नजदीकी 'सपिण्ड' ( सात पीढ़ीतक ), दाहादि कर्म कर सकते हैं। सपिण्ड भी न हों तो 'सोदक' ( चौदह पीढ़ीतक ), सोदक भी न हों तो कन्या आदि दाहादि कर्म कर सकती है। ( विशेष जिज्ञासुओंको 'निर्णय-सिन्धु' देखना चाहिये। )

( ६ ) मृतक पुरुषके दाहादि कर्म करनेवाला यदि कोई भी न हो तो वहाँके 'राजा' को चाहिये वह मृतकका दाहादि कर्म करानेकी व्यवस्था करा दे। राजाको चाहिये मृतक पुरुष

जिस जातिका हो, उसी जातिके पुरुषसे मृतकका दाहादि करा देवे।

( ७ ) राजाके मरनेपर यदि उसके सपिण्ड, सगोत्र आदि कोई भी न हों तो उसका दाहादि कर्म उसका 'पुरोहित' 'मन्त्री' ( दीवान ) अथवा 'सेवक' ( नौकर ) कर सकता है।

( ८ ) जो कन्या विवाह होनेके पूर्व ही मर जाय, उसका दाहादि कर्म उसके पिताको करना चाहिये। पिताके अभावमें मृत कन्याके भाईको दाहादि कर्म करना चाहिये। जिस प्रकार पुरुषोंके मरनेपर उनके दाहादिके अधिकारी कहे गये हैं, उसी प्रकार स्त्रियोंकी भी व्यवस्था समझनी चाहिये।

( ९ ) जो कन्या विवाह होनेके बाद मरे, उसका दाहादि कर्म उसका औरस पुत्र करे। औरस पुत्रके अभावमें दत्तक पुत्र अथवा सौतका पुत्र दाहादि कर्म करे। पुत्रके अभावमें 'पति' दाहादि करे। पतिके अभावमें पतिका भाई ( देवर ) करे, पतिके भाई ( देवर ) के अभावमें उसका पुत्र करे। उसके अभावमें 'पुत्रवधू' और पुत्रवधूके अभावमें कन्याके पिता-माता आदि करें *।

( १० ) मृतकका प्रथम दिन जो दाहादिकर्म प्रारम्भ करे, उसीको दश दिनतक 'दशगात्र' करना चाहिये। दस दिनके भीतर यदि मृतकका नजदीकी पुत्र आदि उपस्थित हो जाय तो वह 'एकादशाह' आदि कर सकता है, किंतु यह 'दशगात्र' नहीं कर सकता।

( ११ ) मृतकका दूरका सम्बन्धी ( भतीजा वगैरह ) भी 'एकादशाह' आदि कर सकता है, किंतु वह मृतकके पुत्रकी अनुपस्थितिमें ही कर सकता है और पुत्रकी उपस्थितिमें नहीं कर सकता।

( १२ ) जिस मृतक पुरुषके 'पुत्र' नहीं है अथवा जो पुत्र अनधिकारी ( पतित ) है उसका 'सपिण्डन' अधिकारि-भेदसे अन्य लोग भी कर सकते हैं।

( १३ ) मृत स्त्रीका 'सपिण्डन' उसका पति या पुत्र ही कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता। दूसरे अधिकारीगण सपिण्डनके अतिरिक्त समस्त कर्म कर सकते हैं। इतनेसे ही स्त्रीकी सद्‌गति हो जाती है।

( १४ ) जो बालक या बालिका नामकरणके पूर्व मर जाय तो उसका दाह, तिलाञ्जलि और पिण्डदान आदि कुछ नहीं होता।

( १५ ) बालकके नामकरणके बाद जबतक वह तीन वर्ष-का न हुआ हो और उसका मुण्डन भी न हुआ हो, ऐसे बालककी मृत्युमें उसका दाह, तिलाञ्जलि, पिण्डदान आदि करे अथवा न करे। दोनों ही पक्ष शास्त्रीय हैं।

( १६ ) बालककी मृत्यु यदि तीन वर्षकी आयुके बाद हो और उसका मुण्डन भी हो गया हो तो उसका दाह और तिलाञ्जलि आदि करना आवश्यक है।

( १७ ) जिस बालककी मृत्यु मुण्डन होनेके बाद हो, वह कितना भी छोटा हो, उसका दाह, तिलाञ्जलि और पिण्डदान आदि करना आवश्यक है।

( १८ ) सपिण्डके मरनेपर सपिण्डोंको, सोदकके मरनेपर सोदकोंको, माता-पिताके मरनेपर पुत्रोंको, नाना-नानीके मरने-पर नातियोंको और आचार्य ( गुरु ) के मरनेपर शिष्योंको जबतक उनका आशौच रहे तबतक उनके नामसे प्रतिदिन तिलाञ्जलि ( तिलोदक ) देना चाहिये।

( १९ ) विवाहिता कन्या मरे तो पिता, बहन मरे तो भाई, भानजा ( भगिनी-पुत्र ) मरे तो मामा, श्वसुर मरे तो दामाद ( जामाता ), मित्र मरे तो मित्र, पुरोहित मरे तो यजमान और यजमान मरे तो पुरोहित आदि यदि 'तिलाञ्जलि' न दें तो कोई क्षति नहीं है।

( २० ) जो द्विज व्रात्य ( जिस द्विजका उपनयन शास्त्रोक्त अवस्थानुसार न हुआ हो ), जिस ब्रह्मचारीका समावर्त्तन न हुआ हो, जो गायत्री-पुरश्चरण, चान्द्रायण व्रत आदि विशिष्ट कर्मकी पूर्तिके लिये संनद्ध हो, जो संन्यासी हो, जो पतित ( जो भयंकर पाप करनेके कारण जातिसे बहिष्कृत ) हो, जो जन्मसे ही नपुंसक हो, जो वेद-शास्त्रविरुद्ध धर्मको मानता हो और जो दूसरेके धनको हड़प लेनेवाला हो, ऐसे लोगोंके

* जिस कन्याका विवाह हो जाता है, वह अपने पिताके गोत्रसे हटकर अपने पतिके गोत्रमें मिल जाती है। पतिके गोत्रसे सम्बन्धित होनेपर विवाहिता कन्या यदि मर जाती है तो उसका दाहादि कर्म करनेका अधिकार पतिकुलके पुरुषोंको ही होता है। यदि पतिकुलमें कोई भी अधिकारी न हो तो पितृकुलके पुरुषोंको दाहादि करनेका अधिकार होता है। यदि पितृकुलमें भी कोई अधिकारी न हो तो मातृकुल ( नानाका वंश ) के पुरुषोंको दाहादि करनेका अधिकार होता है।

मरनेपर यदि उनके कौटुम्बिक 'तिलाञ्जलि' न दें तो कोई हानि नहीं। ऐसे लोगोंको 'पतित' कहा गया है। पतित व्यक्ति 'तिलाञ्जलि' के अधिकारी नहीं होते।

( २१ ) द्विज ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) के शव ( मुर्दा ) को शूद्र स्पर्श न करे। द्विजके शवको यदि शूद्र स्पर्श करता है तो मृतकके सम्बन्धियोंको विशेष दोष लगता है।

( २२ ) ब्राह्मण अपनेसे हीन वर्णके, क्षत्रिय अपनेसे हीन वर्णके और वैश्य अपनेसे हीन वर्णके शवका स्पर्श न करे। जो उच्च वर्णवाला अपनेसे हीन वर्णके शवका स्पर्श करता है, वह 'पतित' हो जाता है।

( २३ ) जिस शहर, कसबा अथवा गाँव आदिमें चारों ओर बाहर जानेका मार्ग प्रशस्त हो, तो वहाँ मरनेवाले 'ब्राह्मण' के शवको पश्चिमकी तरफसे, क्षत्रियको उत्तरकी तरफसे, वैश्यको पूर्वकी तरफसे और शूद्रको दक्षिणकी तरफसे 'श्मशान' ले जाना चाहिये।

( २४ ) मृतकको श्मशान ले जाते समय मृतक पुरुषसे बड़ी आयुवाले पुरुषोंको मृतकके आगे-आगे चलना उचित है और छोटी आयुवाले पुरुषोंको मृतकके पीछे-पीछे चलना उचित है।

( २५ ) मृतक पुरुषके सपिण्ड, सगोत्र और इष्ट-मित्र एवं पास-पड़ोसियोंको अवश्य ही मृतकके साथ श्मशानतक जाना उचित है।

( २६ ) मृतकका दाह हो जानेपर श्मशानसे वापस लौटते समय सब लोग पीछेकी ओर अर्थात् श्मशानकी ओर न देखें।

( २७ ) श्मशानसे वापस लौटते समय उपस्थित मनुष्योंमें जो थोड़ी आयुके हों वे आगे-आगे चलें और जो बड़ी अवस्थावाले हों, वे पीछे-पीछे चलें। जब सब लोग गङ्गा आदि नदी, तालाब अथवा कूप आदि स्नानके स्थानपर पहुँचें, तब सर्वप्रथम बड़ी अवस्थावाले वस्त्र-सहित स्नान करें, फिर थोड़ी अवस्थावाले वस्त्र-सहित स्नान करें। यदि गङ्गा आदि नदी हो तो केवल एक ही गोता लगाकर स्नान करें। पश्चात् नदीमें अथवा पाषाण ( पत्थर ) के ऊपर मृतकका नाम, गोत्रादि उच्चारण करके एक बार अथवा तीन बार सबको 'तिलाञ्जलि' देनी चाहिये।

मृतक यदि ब्राह्मण हो तो दक्षिणाभिमुख होकर, क्षत्रिय हो तो उत्तराभिमुख होकर और वैश्य हो तो पूर्वाभिमुख होकर 'तिलाञ्जलि' देनी चाहिये। शूद्रके लिये 'दिशा' का नियम नहीं है। अतः शूद्रको किसी भी दिशाकी ओर मुख करके 'तिलाञ्जलि' दी जा सकती है।

मृतक पुरुषको 'तिलाञ्जलि' देनेके बाद पुनः भलीभाँति स्नान करके फिर मृतकके परिवारवाले तथा अन्य सब लोग मृतकके घर जायँ और मृतकके घरके द्वारके आगे खड़े होकर अपने हाथ-पैर धोवें और मृतकके घरमें उपस्थित 'नापित' द्वारा दी हुई काली मिर्च अथवा नीमकी पत्तीको खाकर अपने-अपने घर लौट जायँ। पश्चात् मृतकके घरवाले अपने घरमें प्रवेश करें और अपने घरके दरवाजेपर पानी गिरा दें।

( २८ ) मृतकका जबतक आशौच रहे, तबतक मृतकके परिवारवालोंको तथा मृतकके इष्ट-मित्रोंको प्रतिदिन गङ्गा आदि नदीमें स्नान करना और तिलाञ्जलि देनी चाहिये।

तिलाञ्जलिकी संख्यामें अनेक मतभेद हैं। एक आचार्यका कहना है कि तिलाञ्जलि एक-एक करके प्रतिदिन दस दिनतक बढ़ानी चाहिये। जैसे प्रथम दिन एक, दूसरे दिन दो और तीसरे दिन तीन—इस क्रमसे बढ़ानी चाहिये। दूसरे आचार्यका कहना है कि प्रथम दिन तीन, द्वितीय दिन छः और तृतीय दिन नव—इस प्रकार तिलाञ्जलि बढ़ानी चाहिये। तीसरे आचार्यका कहना है कि प्रतिदिन एक ही तिलाञ्जलि देनी चाहिये। सारांश यह है कि जिसके कुलमें जिस प्रकार 'तिलाञ्जलि' देनेकी प्रथा हो, उसी प्रकार तिलाञ्जलि देनी चाहिये।

( २९ ) माता-पिताके मरणमें पुत्र तीसरे दिन तीन 'पिण्डदान' करे, फिर सात दिनतक प्रतिदिन एक-एक 'पिण्डदान' करे। इस प्रकार दस दिनमें दस पिण्ड पूर्ण हो जाते हैं। इन्हीं दस पिण्डोंको 'दशगात्र' कहते हैं। माता-पिताके मरणमें यही क्रम उचित और आवश्यक है।

कुछ लोग दस दिनके आशौचमें तीसरे दिन तीन, सातवें दिन चार, दसवें दिन तीन—इस प्रकार दस पिण्ड पूर्ण करते हैं। ( आजकल यही प्रथा विशेष प्रचलित है, किंतु यह प्रथा उत्तम नहीं है। )

कुछ लोग प्रतिदिन एक ही पिण्ड देकर दस दिनमें दस पिण्ड पूर्ण करते हैं। ( यह क्रम विशेष उत्तम है। )

जिसको तीन दिनका आशौच लगे, वह प्रथम दिन तीन, द्वितीय दिन चार और तृतीय दिन तीन इस प्रकार दस पिण्ड दे। और जिसको एक ही दिनका अथवा केवल स्नानमात्र आशौच हो, वह उसी दिन दसों पिण्ड कर दे।

( ३० ) पिण्डदानमें यह आवश्यक है कि जिस वस्तुका* पिण्ड प्रथम दिन बनाया जाय, उसी वस्तुका पिण्ड अन्तिम दिनतक बनाना चाहिये। पिण्डदानमें वस्तुका बार-बार परिवर्तन करना उचित नहीं है।

( ३१ ) मृतकका अस्थिसंचयन श्मशान ( चिताभूमि ) में होता है। दाहके बाद शव ( मुर्दा ) की बची हुई अस्थियों ( हड्डियों ) को एकत्रित करना 'अस्थिसंचयन' कहलाता है। यह 'अस्थिसंचयन' बहुधा उस जगह होता है, जहाँ 'गङ्गा' आदि पवित्र नदी नहीं हैं। जिस नगर, कसबा अथवा ग्राममें 'गङ्गा' आदि नदी होती हैं, वहाँके धार्मिक लोग मृतकके दाहके बाद उसकी बची हुई अस्थियोंको तत्काल 'गङ्गा' आदि नदीमें प्रक्षेप ( गिरा ) कर देते हैं और जहाँ 'गङ्गा' आदि नदी नहीं हैं, वहाँके आस्तिक लोग मृतककी अस्थियोंको एकत्रितकर काशी, प्रयाग, हरद्वार और गढ़मुक्तेश्वर आदि तीर्थस्थानोंमें ले जाकर गङ्गामें प्रक्षेप करते हैं।

( ३२ ) यह अस्थिसंचयन प्रथम दिन अथवा चतुर्थ दिन अथवा सप्तम दिन अथवा नवम दिन किया जाता है। अस्थिसंचयनके सम्बन्धमें एक आचार्यका कहना है कि—ब्राह्मणका प्रथम दिन अथवा चतुर्थ दिन, क्षत्रियका चतुर्थ दिन अथवा पञ्चम दिन और वैश्यका पञ्चम दिन अथवा नवम दिन अस्थिसंचयन करना चाहिये। शूद्रका दसवें दिनसे तीसवें दिनतक अस्थिसंचयन करना चाहिये। दूसरे आचार्यका कहना है कि जिसको जितने दिनका आशौच लगे, वह सर्वप्रथम उस आशौचके दिनोंमेंसे तीन भाग करे, पश्चात् उस भागत्रयमेंसे एक भाग व्यतीत कर 'अस्थिसंचयन' करे। तीसरे आचार्यका कहना है कि—जिसके वहाँ जैसी कुलप्रथा हो, वह तदनुसार 'अस्थिसंचयन' कर सकता है।

( ३३ ) अस्थिसंचयनमें दिनकी गणना मृतकके दाहके दिनसे ही करनी चाहिये, न कि मृत्युके दिनसे करनी चाहिये।

( ३४ ) जिस द्विजका उपनयन-संस्कार न हुआ हो तथा जिस स्त्री और शूद्रका विवाह-संस्कार न हुआ हो, उसका 'अस्थिसंचयन' नहीं करना चाहिये।

( ३५ ) मृतकके दसवें दिन आशौचान्तमें मृतकके समस्त परिवारवालोंको तथा मृतकके साथ श्मशान जानेवाले समस्त इष्ट-मित्रों और प्रेमियोंको गङ्गा आदि नदीके किनारे पहुँचकर अपने-अपने कुलाचारके अनुसार 'बाल' ( केश ) कटाना चाहिये पश्चात् स्नानकर मृतकके घरवालोंके साथ मृतकके घर जायँ और मृतकके घरके दरवाजेके आगे खड़े होकर अपना हाथ-पैर धोवें। पश्चात् मृतकके नापितद्वारा दी हुई कालीमिर्च अथवा नीमकी पत्ती मुखमें चबाते हुए अपने-अपने घर लौट जायँ। पश्चात् मृतकके परिवारवाले भी अपने घरमें प्रवेश करें और अपने घरके दरवाजेपर जल छोड़ दें। सब जगह यह प्रथा नहीं है।

( ३६ ) दाहकर्ता आशौचपर्यन्त स्पर्शास्पर्शका विशेष विचार रक्खे। वह जमीनपर शयन करे और रूई आदिके बने हुए गद्दे-बिछौनेका त्याग करे। ऊनी कंबल और चटाईका सेवन करे। केवल एक बार सात्त्विक भोजन करे। मादक पदार्थोंका त्याग करे। ब्रह्मचर्यसे रहे। सुगन्धित पदार्थोंका सेवन न करे। समस्त प्रकारके माङ्गलिक पदार्थोंसे बचे। क्रोध न करे। गरुड़पुराण और गीता आदि ज्ञानप्रद पुस्तकोंका श्रवण करे। जिस प्रकार दाह करनेवाले आशौचीके नियम हैं, उसी प्रकार उसके परिवारवालोंके भी नियम हैं। अतः आशौचावस्थामें सभीको शास्त्रीय नियमका पालन अवश्य करना चाहिये †।

---

* चावल, जौ और सत्तू आदिका 'पिण्ड' बनता है।

† बहुतसे लोग 'आशौच-निर्णय' के बाबत पूछा करते थे। इसीलिये श्रीशर्माजीके 'आशौच-निर्णय' सम्बन्धी लेख 'कल्याण'में प्रकाशित किये गये। उन्हीं लेखोंका यह परिशिष्ट अंश छापा जा रहा है। प्रसन्नताकी बात है कि यह जनन-मरणसम्बन्धी सभी आवश्यक 'आशौचोंका संकलन 'संक्षिप्त आशौच-निर्णय' नामक पुस्तिकाके रूपमें भी छप गया है। आठ आने मूल्य है। जिनको आवश्यकता हो वे 'वैदिक पुस्तकालय' ७।१४ सकरकन्द गली, वाराणसीसे प्राप्त कर सकते हैं। —सम्पादक

# सत्य-धर्मका वास्तविक स्वरूप

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने 'कवन धर्म श्रुति बिदित बिसाला' इस प्रश्नके उत्तरमें 'परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा' कहा और उन्होंने ही इसके पूर्व अयोध्याकाण्डमें—

**धर्म न दूसर सत्य समाना । आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ॥**

**तथा—**

**सत्य मूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥**

**आदि कहा ।**

ध्यान रहे इन तीनों वचनोंमें वेद, पुराण, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंका पुट देकर उन्होंने अपने अपार सूक्ष्मज्ञानका संकेत किया है । वेद-पुराणादिमें भी—

**सत्यान्नास्ति परो धर्मः ।**

**सत्यमेव जयते नानृतम् ।**

( मुण्डकोपनिषद् ३ । १ । ६ )[1]

**और**

**'अहिंसा परमो धर्मः', 'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि'**

आदि द्विधा प्रतीत होनेवाले वचन प्राप्त होते हैं । इसपर किसीको यह संदेह होना स्वाभाविक है कि इस दो प्रकारके कथनका क्या रहस्य है ? किंतु सत्यकी परिभाषा देखनेसे यह भ्रम दूर हो जाता है । शाण्डिल्योपनिषद्में सत्यकी परिभाषा इस प्रकार है—

**सत्यं नाम मनोवाक्कायकर्मभिर्भूतहितयथार्थाभिभाषणम् ।** ( १ । १ । १३ )

अर्थात् मन, वचन, कर्मसे परोपकार एवं प्राणिहितकारी यथार्थ एवं श्रेयस्कर कथन ही सत्य है ।

योगदर्शन २ । ३० के भाष्यमें इसका स्पष्ट समाधान है । यथा—

**तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः । उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलाः, तत्सिद्धिपरतया तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते ।**

अर्थात् इस सूत्रमें अहिंसा शब्द प्रथम इसलिये रक्खा कि अहिंसा ही सर्वात्मना साध्य है । बादके सत्यादि यम-नियम इसीको सिद्ध करनेके लिये प्रतिपादित किये गये हैं । आचार्य पञ्चशिख भी कहते हैं—

**स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति ।**

योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षुने इसकी व्याख्यामें महाभारत, शान्तिपर्वका यह वचन उद्धृत किया है—

**यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।**
**सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥**
**एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते ।**

अर्थात् जैसे हाथीके पैरमें सभी पैरसे चलनेवालोंके पैर आ जाते हैं, वैसे ही अहिंसाके अन्तर्गत समस्त धर्मार्थ भी आ जाते हैं । ब्रह्मवैवर्तपुराण एवं 'विचख्नुगीता' में भी मनुका हवाला देते हुए यही कहा गया है—

**सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।**

( महा० शा० २९५ । ५ )

**अहिंसा परमो धर्मो गीतो वै मनुना पुरा ।**

वास्तवमें मनु भी ऐसा ही कहते हैं—

**अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।**

( ६ । ६० )

**अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।**
**तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥**

( ६ । ७५ )

---

१. सत्यके समर्थक वचनोंके लिये 'मानवता-अङ्क' पृ० ६१ से ६३ में स्वा० श्रीसीतारामदासजीका तथा 'कल्याण' वर्ष २३ के ६ठे अङ्कमें एवं 'त्रिपथा' जून १९६१ के अङ्कमें हमारे लेख देखने चाहिये ।

मनुने यह भी कहा है, सौ वर्षतक अश्वमेध करनेवाले तथा मांसत्यागीका पुण्य समान है ( ५ । ५३ ) । ब्रह्मपुराण ( २१६ । ६५ ) में अहिंसाका इससे भी अधिक महत्त्व है । 'आदिपुराण' भी यही कहता है—

**धर्माणां च यथाहिंसाभयदानं वरेण्यकम् ।**
( १ । १९ )

पद्मपुराणका कथन है कि जैसे सभी नदियाँ समुद्रमें पर्यवसित होती हैं, वैसे ही हिंसामें सभी पापोंका अन्तर्भाव हो जाता है—

**प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रमृजुवक्रगाः ।**
**सर्वेऽधर्माश्च हिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढम् ॥**
( पद्म० उत्तरखण्ड २४३ । ६ )

प्रायः सभी धर्मशास्त्रों, योगदर्शन, महाभारतमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सत्य परम धर्म है, तथापि सत्य भी वही है जिससे किसीकी हिंसा न हो—परोपकार हो । यदि सत्यभाषणसे हिंसादिकी सम्भावना हो तो वहाँ सत्यभाषण अनुचित है । इससे उसे पुण्य तथा प्रतिष्ठा मिलती, पाप अथवा नरक नहीं । इस सम्बन्धमें कई विशिष्ट आख्यान हैं । इनमेंसे एक-दो यहाँ दिये जाते हैं ।

महाभारत कर्णपर्वमें आता है कि एक बार भारत-युद्धमें ( १५ वें दिन ) कर्णने युधिष्ठिरको परास्त किया और उनके गलेमें धनुषकी रस्सी डालकर कहने लगा कि 'तू जब लड़ना नहीं जानता तो युद्धक्षेत्रमें क्यों आता है ? अच्छा जा, अब आगेसे लड़ने न आना ।' युधिष्ठिर अत्यन्त लज्जित होकर शिविरमें जाकर लेट रहे थे कि अर्जुन आये । अत्यन्त आर्त होकर युधिष्ठिरने कहा कि 'अर्जुन ! तुम्हारे बल तथा गाण्डीव धनुषको धिक्कार है, जो पंद्रह दिनोंमें भी इन कौरवोंका अन्त नहीं कर सके ।' अर्जुनकी प्रतिज्ञा थी कि जो उन्हें तथा गाण्डीवको धिक्कारेगा उसका सिर उतार लेंगे । वे तलवार लेकर वेगसे घूम ही रहे थे कि श्रीकृष्ण आ गये । उन्हें एकान्तमें इस प्रकार देख आश्चर्य हुआ । पूछनेपर अर्जुनने जब स्थिति तथा प्रतिज्ञा बतलायी तब भगवान्‌ने कहा कि 'भोले धर्मप्रेमी ! अहिंसा ही सर्वोत्तम धर्म है । किसीकी प्राणरक्षाके लिये असत्य भी बोल दे, पर उसकी हत्या न होने दे—

**प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम ।**
**अनृतं वा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन ॥**
( कर्णपर्व ६९ । २३ )

साथ ही उन्होंने कौशिक नामक मूर्ख ब्राह्मणकी कथा कही, जो जंगलमें सत्य व्रतका नियम लिये हुए एक नदीके संगमपर बसता था । एक दिन कुछ मनुष्य डाकुओंके भयसे उसके आश्रमके पास छिप गये । पर डाकुओंने जब उससे पूछा तो उसने उन्हें बतला दिया और इस धर्मप्रतिरूपक सत्याभासके भीषण पापसे उसे चिरकाल-तक नरककी यन्त्रणा भोगनी पड़ी ।

ठीक ऐसी ही दूसरी कथा देवीभागवतके तीसरे स्कन्धमें है । तमसा-तटवासी देवदत्त ब्राह्मणका गूँगा पुत्र सत्यव्रत निर्जन वनमें वास कर रहा था । एक दिन उसके सामनेसे एक व्याध मृगको खदेड़ते आया । मृग उसके आश्रमके समीप ही कहीं छिपा था । जब व्याधने सत्यव्रतसे उसका पता पूछा तो वह सोचने लगा कि जो अहिंसा, दया, परोपकार आदिसे संयुक्त हो, वस्तुतः वही सत्य है—

**सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा**
**दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ।**
**हितं नराणां भवतीह येन**
**तदेव सत्यं न तथान्यथैव ॥**
( देवीभागवत ३ । ११ । ३६ )

भगवद्गीतामें भगवान् उसे ही परम योगी कहते हैं, जो दूसरोंके दुःखमें पूर्ण कातर हो—

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥**
( ६ । ३२ )

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

**'निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥**

**सज्जनस्य हृदयं नवनीतं यद् वदन्ति कवयस्तदलीकम्।**
**अन्यदेहविलसत्परितापात् सज्जनो द्रवति नो नवनीतम्॥**

शिवपुराणमें ज्योतिर्लिङ्गके माहात्म्यमें गौतम ऋषिके परोपकारकी अद्भुत कथा है। वहाँ बतलाया गया है कि प्राणीकी महत्ताका मापदण्ड परोपकार गुणसे ही होता है। जो जितना अधिक परोपकारी है, वह उतना ही महान् है। साधुका जीवन ही परोपकारके लिये है। उपकारी, दयालु एवं जितेन्द्रिय व्यक्तियोंके खंभेपर ही यह पृथ्वी टिकी हुई है—

**दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः।**
**एतैश्च पुण्यस्तम्भैश्च चतुर्भिर्धार्यते मही॥**
( कोटि० २४ । २६ )

किंतु यह कृपा भी आर्त प्राणी—उत्पीडितपर ही होनी चाहिये, आततायीपर नहीं। गाय और व्याघ्रका जहाँ प्रसङ्ग हो वहाँ व्याघ्रका वध ही कर्तव्य है।

राजाओंके लिये मृगयाविधानका भी यही तात्पर्य था कि वे हिंसक जन्तुओंका अन्त करें। आततायीपर कृपा 'कार्पण्यदोष' है। गीताके आरम्भमें यही दोष अर्जुनको हुआ—'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः।' भगवान्ने भी इस दोषको अनार्यजुष्ट, अकीर्तिकर और अस्वर्ग्य कहा। फिर इसे दूर भी किया गीतोपदेशसे। इसीलिये असुर-संहारार्थ भगवान् अवतरित होते हैं।

आज पुनः भारतकी वही दशा है। इस महामोहकी क्या औषध है? केवल भगवान्से प्रार्थना; क्योंकि आजकी सारी शक्ति इन मोहग्रस्त बन्धुओंके ही हाथ है। जहाँ कोई शक्ति नहीं होती, वहाँ पुकारनेपर सर्वशक्तिमान् भगवान् अवश्य ही प्रकट होते हैं। कई बार तो उनकी व्यवस्था पहलेसे ही तैयार रहती है; क्योंकि वे जानते हैं कि अमुक व्यक्ति अमुक समय पुकारेगा। यह अग्रिम ग्रहयोग इसी आशाका प्रदीप है। हमें विश्वास है भगवान् अवश्य ही सबका मङ्गल करेंगे।

# मानवता

( रचयिता—विद्यावाचस्पति डॉक्टर श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्० )

विद्याके विलासमें निमग्न रहता है मन,
शिक्षा, शील, धृतिका महत्त्व अपनाया है।
धारण किया है सत्यव्रत बड़ी दृढ़तासे,
मान, मद, मल जिसको न कभी भाया है।
लोक-दुःख दूर करनेमें सुख पाता रहा,
पर-उपकारी बन संकट मिटाया है।
करके विहित कर्म सुयश कमाया सदा,
ऐसा धीर-वीर धन्य 'मानव' कहाया है।

× × × ×

त्याग-तपस्यासे पवित्र-परिपुष्ट हुआ जिसका 'तन' है,
भद्र भावना भरा स्नेहसंयुक्त शुद्ध जिसका 'मन' है।
होता व्यय निज हित-परहितमें जिसका शुचि संचित 'धन' है,
वही श्रेष्ठ सच्चा 'मानव' है, धन्य उसीका 'जीवन' है॥

# नरक क्या ?

[ कहानी ]

( लेखक—श्री 'चक्र' )

'को वास्ति घोरो नरकः ? स्वदेहः ।'

'नारकीय प्राणी !' कलिंग-नरेश द्युमान् ग्लानिसे गले जा रहे थे । शब्द नहीं, वज्रसे भी तीक्ष्ण अस्त्र थे वे । ऐसे अस्त्र जो मर्मपर क्षण-क्षणमें आघात करके उसे विदीर्ण कर रहे थे !

राज्यका अमर-आकांक्ष्य वैभव, दिगन्तधवल सुयश, विद्वानोंके द्वारा प्रशंसित प्रतिभा—जैसे सब सारहीन हो गये ये आनन्दके उपकरण । बन्दियोंका सुयश-गान अपना उपहास प्रतीत होता था । मागध जब वंश-विरुदावलीका वर्णन करते—जी चाहता, कहीं ऐसे स्थानमें जा छिपें, जहाँ किसीको मुख न दिखाना पड़े । सूत प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हुए जब वर्तमानके वर्णनपर आने लगते, नरेश व्याकुल होकर उठ जाया करते राजसभासे ।

'आप सब एक अयोग्यकी प्रशस्तिमें अपनी प्रतिभा-का दुरुपयोग क्यों करते हैं ?' विनय नहीं, अन्तरका सच्चा खेद होता था वाणीमें । किंतु परम्परा ही ऐसी बन गयी थी कि नरेशके सम्मुख आनेवाले कवि, ज्योतिषी तथा अन्य विद्वान् सबसे अधिक वाक्य-व्यय नरपतिकी प्रशंसामें ही करते थे और इससे अत्यधिक वेदना होती थी कलिंग-नरेशको । पर कोई उनका निषेध सुनता कहाँ है । लोग तो उसे महाराजकी शिष्टता—विनय मान लेते हैं ।

'आप अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न करें !' कुलपुरोहित अपने प्रबल-पराक्रम यजमानको किसी प्रकार उसकी आधि ( मनोरोग ) से मुक्ति दिलानेका प्रयत्न कर रहे हैं । 'यदि कोई प्राक्तन पाप होंगे तो उनका प्रायश्चित्त हो जायगा । अश्वमेध महापापोंका भी परिहारक है । आपका प्रताप दिग्विजय करनेको पर्याप्त है ।'

'दिग्विजयकी मुझे चिन्ता नहीं है । कलिंगके शूर पराभव सुननेके कभी अभ्यस्त नहीं रहे । विजय-श्रीके कर उनके धनुषपर ज्या चढ़ते ही यशोमाल्य लिये उन्हें अलंकृत करने उठ जाते हैं । नरेशने उत्साह नहीं दिखलाया, किंतु एक अनधिकारी नारकीय प्राणी सम्राट् बन जायगा केवल अपनोंके शौर्यके सहारे ! धरा रसातल चली जायगी । धर्म कहाँ आश्रय ढूँढ़ेगा ! द्युमान्की दिग्विजय—असुरोंकी विजयसे भिन्न होगी क्या वह ? मैं सम्राट्पदकी कल्पनासे भी काँप उठता हूँ प्रभु !'

'कोई और उपयुक्त अनुष्ठान या आराधना !' पुरोहित-को किसी भी प्रकार अपने इस यजमानके चित्तको आश्वासन देना है । आश्वासन ही तो देना है—यह श्रद्धाप्राण, सदाचार-संयम-तत्पर, मर्यादाकी मूर्ति-द्युमान्—इसमें कलुष सम्भव कैसे है ? प्रजा जिसे प्राणके समान लगती है, सम्यक् सदाचारके निर्वाहके लिये जिसने अंगपतिका क्रोध स्वीकार किया; किंतु अपने एकपत्नीव्रतको त्यागकर उनकी सौन्दर्यमयी दुहिताका पाणिग्रहण जिसे प्रिय नहीं लगा, जो शत्रुके भी क्लेशसे विकल हो उठता है, उसमें कलुष सम्भव है ?

'नारकीय प्राणी !' किंतु नरकसे जो संसारमें आते हैं, उनके लक्षण भी तो शास्त्रोंने बतलाये हैं । द्युमान्में क्रोध, स्वार्थ, हिंसा-प्रवृत्ति, विषय-लोलुपता—कुछ भी तो नहीं है । द्युमान् यदि स्वर्गसे नहीं आया है तो संसारमें फिर कोई स्वर्गसे आया प्राणी नहीं हो सकता ।

'नारकीय प्राणी !' जिनके श्रीमुखसे ये शब्द निकले थे, उनपर अविश्वास करनेका भी साहस नहीं राजपुरोहितमें। वे अवधूतश्रेष्ठ निदाघ—महर्षिगण उनकी चरण-वन्दना करते हैं। उन नित्य निःस्पृह, निरन्तर आत्मलीनमें न रोष सम्भव है और न प्रमाद वहाँ प्रश्रय पा सकता है।

राजपुरोहित शास्त्रज्ञ हैं—गम्भीर विद्वान् पूर्व-मीमांसाशास्त्रके। अनेक बार ऋषियोंने अपने यज्ञोंमें उन्हें ऋत्विक् अथवा अध्वर्यु वरण करके सम्मानित किया है। वेदके रहस्य एवं धर्मके तत्त्वको जाननेका गर्व वे नहीं करते, ठीक-ठीक धर्मका तत्त्व भगवान् नर-नारायण ही जानते हैं; किंतु जितना ज्ञान उनका है, अपने यजमानमें उन्हें अल्पतम पाप भी नहीं दीखता; किंतु महर्षि निदाघकी वाणी असत्यका स्पर्श करेगी, धर्मराज भी ऐसा सोचनेका साहस नहीं कर सकते।

'यह ठीक है कि युवराजका अध्ययन अभी समाप्त नहीं हुआ।' नरेशने बाधा दी कुलपुरोहितके चिन्तनमें—किंतु आपके करोंकी छायामें सिंहासनपर उन्हें बैठना मात्र ही तो है?' 'आप! आप सिंहासन-त्याग.........।' पूरी बात आशंकाके कारण मुखसे निकल नहीं सकी।

'आप—जैसे वेदज्ञ कहते हैं 'तुषाग्निको शरीर समर्पित कर देना मानवका सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है।' नरेशने स्वस्थ स्वरमें कहा—'तीर्थराजमें गङ्गा-यमुना जहाँ अंकमाल देती हैं, मकरके आगामी पुण्यपर्वपर इस अधमकी भस्म वहाँ परिपूत बने, ऐसी अनुमति प्रदान करें।'

'कोई इसे स्वीकार नहीं करेगा। प्रजा, सामन्त, विप्रवृन्द एवं आश्रितजन कोई नहीं।' राजपुरोहित दृढ स्वरमें बोले—'अल्प पापमें अधिक प्रायश्चित्त निर्दिष्ट करनेवाला ब्राह्मण नरकगामी होता है। यदि यही प्रायश्चित्त आवश्यक हो तो इसका विधान महर्षि निदाघको ही करना चाहये।'

× × ×

'महर्षि निदाघके राज्यमें पधारनेका समाचार मिला है!' उस दिन राजपुरोहितने ही सोत्साह सूचित किया था। वे दिग्वसन, अलक्ष्यलिङ्ग अवधूत—उनका कोई ठीक पता-ठिकाना हुआ करता है? उन ज्ञानमूर्तिके दर्शन जिसे हो जायँ, सौभाग्य उसका। ऋषिगण भी सदा उन्हें कहाँ पहिचान पाते हैं।

उन्मत्त, जडके समान अपनेको प्रदर्शित करनेवाले, गृहस्थके यहाँ गोदोहनकालसे अधिक किसी प्रकार न रुकनेवाले उन नित्य परिव्राट्से उपदेश-प्राप्तिकी आशा तो दुराशा ही है। वे कहाँ प्रवचन करते हैं? किंतु उनके दर्शन ही क्या कम सौभाग्यके सूचक हैं।

एक अन्तेवासी उनके दर्शन समीपके वानप्रस्थाश्रममें कर आया था। उसने अपने गुरुदेवको सूचित किया और राजपुरोहितकी कलिंग-नरेशपर असीम कृपा तो सबको ज्ञात है। वे तत्काल राजसदन पहुँच गये थे—'अवश्य ही कुछ श्रम उठाना पड़ेगा उन्हें ढूँढ़नेमें।'

'वह श्रम हमारे सौभाग्यको शुभ्र करनेवाली तपस्या बनेगा!' नरेशने तत्काल रथ प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दे दी।

कोई सेवक साथ नहीं लिया गया। राजपुरोहितने अपना एक ब्रह्मचारी अवश्य भेज दिया था पहिले ही। रथ वानप्रस्थ तपस्वियोंके आश्रमोंतक पहुँचा भी नहीं था कि वह ब्रह्मचारी मार्गमें लौटता मिला—'भगवान् भास्करके प्रधान पीठकी ओर महर्षि चले गये।'

एकसे दूसरे स्थानोंमें पूछते—पता लगाते अन्तमें महर्षि निदाघ मिल गये थे। वे शाद्वल भूमिमें एक नारिकेल तरुकी छायाका आश्रय लेकर लेटे थे। एक हाथपर मस्तक रखकर शान्त पड़ा था उनका श्रीअङ्ग। रथ पर्याप्त दूर छोड़ दिया गया।

राजपुरोहितको आगे करके नरेश महर्षिके समीप मन्दगतिसे पहुँचे। भूमिमें पड़कर प्रणिपात किया सभीने। राजपुरोहितका ब्रह्मचारी भी साथ ही था और सारथि भी।

'नारकीय प्राणी !' महर्षिने तिरस्कारपूर्वक कहा और शीघ्रतापूर्वक उठकर खड़े हो गये। वे इतने वेगसे एक ओर दौड़ पड़े कि उनके पीछे दूसरेके लिये दौड़ना भी कठिन ही था। दौड़ना मर्यादाके अनुरूप भी नहीं होता।

'नारकीय प्राणी !' ठक् रह गये चारों-के-चारों व्यक्ति। वाक्य किसी एकको लक्ष्य करके नहीं कहा गया था; किंतु उसका लक्ष्य कौन था, यह निर्णय कोई समस्या नहीं थी। सूतको महर्षि सम्बोधन करते, यह सम्भावना नहीं थी। राजपुरोहित तथा ब्रह्मचारीके लिये महर्षि इस प्रकारके शब्दका उपयोग कर नहीं सकते थे। कुछ भी हो, वे दोनों ब्राह्मण थे और ब्राह्मणका अबोध शिशु भी रुष्ट हो जाय—स्रष्टाको भी वह रोष भारी पड़ता है। महर्षि विप्रका अपमान कर नहीं सकते थे।

'नारकीय प्राणी!' आगतोंमें जो मुख्य था, सम्बोधन उसीको लक्ष्य करेगा। नरेशको लगा कि दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयी हैं। वे मस्तक पकड़कर बैठ गये। राजपुरोहित बड़ी कठिनाईसे उन्हें रथपर बैठा सके उस दिन।

× × ×

'महर्षि निदाघ कोणार्क-क्षेत्रमें ही हैं !' राजपुरोहित-के ब्रह्मचारीने ही इस बार भी समाचार दिया था। कई ब्रह्मचारी तथा अनेक राजसेवक महर्षिका पता लगाने कई दिनोंसे चारों ओर घूम रहे थे।

'हम पहिले भगवान् नारायणको नमस्कार करेंगे।' कोणार्क पहुँचकर यद्यपि अवधूतका पता लग गया; किंतु राजपुरोहितने रथको देवधामकी ओर ले जानेका आदेश किया। भगवान् सूर्यकी विधिवत् अर्चना उन्होंने की और नरेशसे सम्पन्न करायी।

'जगत्के परम प्रकाशक ! आपके चरणोंमें यह अज्ञानान्धकारमें डूबता ब्राह्मण प्रकाश-प्राप्तिकी कामनासे आया है।' पूजाके अन्तमें राजपुरोहितने जब प्रार्थना प्रारम्भ की, केवल नरेश ही नहीं, मन्दिरमें उपस्थित समस्त जन विस्मित हो उठे। यह अद्भुत गम्भीर स्वर—वैखरी वाणी तो नहीं है। हृदयसे उठता घनघोष-जैसी यह पश्यन्ती वाणी—'कोणार्कसे निराश लौटने नहीं आया यह विप्र। आपने अनुकम्पा नहीं की—श्रीविग्रहके सम्मुख प्राङ्गणमें इस शरीरकी भस्म मिलेगी कल प्रातः। भार्गव ब्राह्मण देह-दाहके लिये चिताकी चिन्ता नहीं करता। अग्निकी धारणा उसे माताके दूधके साथ मिलती है। यजमानको तुषाग्निमें आहुति बनते देखनेसे पूर्व योगाग्नि दग्ध न कर दे यह देह—पौरोहित्य व्यर्थ रहा मेरा।'

किंतु भगवान्के श्रीचरणोंमें पहुँची प्रार्थना कभी निराश लौटी है जो आज लौटती ? महर्षि निदाघ ही कहाँ निष्ठुर हो सकते थे। जिसमें रज और तमकी छायाका स्पर्श नहीं—रोष, क्रोध, घृणा, निष्ठुरताका प्रवेश सम्भव है वहाँ। उनकी वाणीने अमङ्गलका स्पर्श कब किया !

'जिज्ञासु है तू ! आ ! आ जा !' सागर-पुलिनपर पड़े थे वे सर्वज्ञ इस दिन। आज भी वे उसीपर दक्षिण करका उपधान बनाये लेटे थे। आज नरेशके साथ राजपुरोहित मात्र थे महर्षिको प्रणिपात करनेवाले। शेष सभी लोगोंको राजपुरोहितने रोक दिया था। महर्षिने किंचित् मस्तक उठाया और अधरोंपर मन्दस्मित आ गया—'विप्रश्रेष्ठ ! आपका यजमान अब प्रकाशके उन्मुख हो चुका है।'

'श्रीचरणोंकी कृपा !' राजपुरोहितने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'प्रकाशके अधिदेवताके पादपङ्कजोंमें प्रणिपात करके ही हम इधर आये हैं।'

'आप शास्त्रज्ञ हैं। नरकका स्वरूप क्या है ?' नरेश और राजपुरोहित दोनों जब समीप पुलिनकी

रेतपर बैठ गये, दो क्षण रुककर महर्षिने पूछा—'क्या-क्या है नरकोंमें ?

'अन्धकार, घृणित वस्तुएँ ।' राजपुरोहितने विनम्र स्वरमें ही उत्तर दिया—'पीड़ाके अकल्पनीय उपकरण, मल-मूत्र-शोणितादि अपवित्र पूयगन्ध घृणित पदार्थ !'

'राजन् ! तुम्हारे इस शरीरके भीतर क्या-क्या है ?' महर्षि देरतक मौन रहे । उन्होंने नेत्र बंद कर लिये थे । जैसे राजपुरोहितका उत्तर उन्होंने सुना ही नहीं । एकाएक नेत्र-पलक खुले और उन्होंने द्युमान्‌की ओर देखा—'कुछ श्रेष्ठ, सुन्दर, सुपवित्र तत्त्व !'

'भगवन् ! इसमें श्रेष्ठ सुन्दर सुपवित्र क्या ?' नरेश संकोचपूर्वक बोले—'रक्त, मांस, मेद, अस्थि, लोम, मज्जा, त्वचा, मल, मूत्र·········।'

'सब अपवित्र, सब दुर्गन्धित, सब घृणित !' महर्षि उठकर बैठ गये—'और इस देहने दुःख-ही-दुःख दिया प्राणियोंको । दारुण वेदना देनेवाला यह कारागार । तब यह नरक नहीं है राजन् ?'

कोई कैसे कहे कि यह नरक नहीं है । राजपुरोहित-के मुखसे भी शब्द नहीं निकला । नरेशने केवल स्वीकृतिमें सिर झुका दिया ।

'इस नरकमें—देहमें पड़ा प्राणी—देहासक्त ही नारकीय प्राणी है ।' महर्षिकी वाणीके शब्द-शब्दसे मानो प्रकाश फूटा पड़ता था । देहासक्ति ही उस नरक भी ले जाती है । प्रायश्चित्त करना है तुम्हें ? इस देहासक्तिका त्याग तुम्हारा प्रायश्चित्त !'

राजपुरोहितके साथ नरेशने श्रद्धाभरित प्रणिपात किया वहीं पुलिनपर उन अवधूतश्रेष्ठको ।

## उद्धवके प्रति

( रचयिता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' )

( १ )

सुनत न और की धुनत अपनी ही आप
　　आपको तो अगुन बखानिबे की धुन है,
जीवन हमारो अहै नाम-गुन मोहन को
　　वासों कहा काम जाको नाम है न गुन है।
हम निगुनी हैं, हमैं सगुन सिखैहै गुन
　　दैहै कहा गुन जो अगम्य है अगुन है,
एक अंग हीन को जहान असगुन मानै
　　सब अंग हीन तो महान् असगुन है॥

( २ )

नैन बिन देखै ब्रह्म नैन हूते दीखै नायँ
　　स्याम हमें देखैं हम स्यामहिं निहारै हैं,
रूप हीन ब्रह्मको निरूपन करत आप
　　स्याम मन हरन अनूप रूप वारे हैं।
चाहि अनचाहे की सदा ही आप चाहे करो
　　हम न अनेह पै सनेह उर धारै हैं,
अलख निरंजन सों काम कहा ऊधो ! हमें
　　स्याम दृग-कंजनके अंजन हमारे हैं॥

# उत्तराखण्डकी यात्रा

( लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव )

[ गताङ्कसे आगे ]

## श्रीबदरीनाथ

केदारनाथसे जब हम वापिस हुए उस समय बादल उठ रहे थे। हमारे चलते-चलते सारा दृश्य बादलोंके आवरणमें ढक गया। अरण्यखण्डों, उत्तुंग शैल-मालाओं, केदारनाथके मन्दिर, उसके पीछेके विशाल हिमानी और मंदाकिनी सभीने नखशिख इन मेघोंकी ओढ़नी ओढ़ ली। पैर तो हमारे अवनी-पर थे, पर चित्तदृष्टिमें सर्वत्र छाये मेघ ही थे। जान पड़ता मेघोंके लोकमें हम विचरण कर रहे हैं। हमें अपने बचपनकी बातें याद आयीं। जब मैदानोंमें मेघ उमड़-घुमड़कर इर्द-गिर्द छा जाते हैं तो बच्चे कहते हैं, मेघ चरने निकले हैं। हम इन मेघोंको बाँधते, चीरते, समेटते चलते पर ये हमारे चतुर्दिक् छाये ही रहते। हम सराबोर इनमें डूबे रहते। मेघमय इस दृश्यमें हम ऐसे निरुपाय थे जैसे किसी उमड़ती सरिताके वेगको रोकनेमें मिट्टीका एक ढेला। मानव यहाँ ऐसा दिखता जैसे जलधिका अवगाहन करने चला उसकी ऊर्मियोंमें ही उलझा कोई तटवर्ती पोत। इस मेघ-सिन्धुका अवगाहन कर हम आगे बढ़ रहे थे, कभी डूबते कभी उतराते कभी ये ओस-विन्दु बन हमारे तनपर टपकते, कभी बड़ी-बड़ी बूँदोंकी वर्षा करते। मंदाकिनीको पार कर हमने अपने अश्रुपूरित नेत्र पोंछे ही थे कि सजल मेघोंने वृष्टि आरम्भ कर दी। कुछ पग चलते ही हम सराबोर हो गये इस बारिससे। जोरोंकी वर्षा और घने मेघ आवरणमें पथ टोहते हम बढ़ रहे थे भींगते, ठंडसे ठिठुरते। नीचे मंदाकिनीका मन्द-मन्द रव, ऊपर मेघोंका घोर गर्जन, फिर अपने चतुर्दिक् छाये उन्हींके आच्छादनके कारण एक अदृष्ट सृष्टि और उसके अद्भुत वातावरणमें हम जा रहे थे। कभी भय लगता, कभी विस्मय होता और कभी प्रकृतिकी इस अलौकिक और अनुपम रूप-सुधाका हम मुग्धमन पान करने लगते। ज्यों-ज्यों वर्षा बढ़ी, मेघोंका आवरण हटा। चढ़ावकी अपेक्षा कभी-कभी उतारमें जल्दी चलना कठिन होता है, थमकर चलनेपर भी बरबस हमारे पग कुछ जल्दी ही उठ रहे थे। ऊपरसे नीचे जो उतर रहे थे। ऊपर चढ़नेमें हमें पर्याप्त श्रम उठाना पड़ा था, नीचे उतरनेमें उसका दशमांश भी नहीं लग रहा था। चढ़ाव और उतारके इस चक्करकी महत्तापर इसी वक्त बोलते हुए गोविन्ददासने कहा, मानव-जीवन स्वयं एक कहानी है चढ़ाव और उतारकी। एक प्रयोग है, उत्थान और पतनका। चींटीकी तरह कितने चढ़ते-गिरते, पुनः चढ़ते फिर गिरते और इस चढ़ने-उतरनेके क्रममें कितने ऊपर पहुँच पाते हैं और पहुँचनेपर भी कितने ऐसे हैं जो कुछ देर थम पाते हैं। अपने मूल उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये, एक साधककी साधना और अनवरत श्रमकी आवश्यकता होती है। ऐसे साधनापूरित मन और अनवरत श्रमसे उठा मानव एक बार जब अपनी ऊँचाईपर पहुँच जाता है तो नीचे आनेकी कल्पना उसे भयावह हो जाती है। वह सदा सजग रहता है उस स्थितिके प्रति जिसमें उस ऊँचाईके बीज छिपे रहते हैं। यदि वह इस स्थितिको दृष्टिसे ओझल कर दे तो पलक मारते जरा-सी तन्द्रा, मोह या सुषुप्तिकी अवस्थामें एक झटकेमें नीचे आ जाय। इसीलिये जिस तरह आँख खोलकर धीरे-धीरे अपने विवेक और उद्यमसे आदमी ऊपर बढ़ता है। पाँवोंकी मंजिलमें भी आहिस्ता-आहिस्ता उसे नीचे उतरना होता है। आँख बंदकर वह नीचे नहीं उतर सकता। आँख बंदकर नीचे उतरनेवालोंको तो तिमिरमय गहरे खंदककी ही शरण मिल सकती है। फिर पहाड़ोंकी चढ़ाई और उतार दोनोंमें ही मानवको सदा सजग रहना पड़ता है। चींटीकी तरह फिसलनका सदा भय बना रहता है। न जाने उसका कौन पग उसे नीचे खंदकमें खिसकानेवाला हो। एक बात और, भावों और भावनाओंकी ऊँचाईपर पहुँचनेके लिये मनको जिस संयम, सहिष्णुता और एकाग्रताकी मंजिल नापनी पड़ती है वह उसकी सामान्य स्थितिमें नहीं। अपनी सामान्य स्थितिपर तो वह सहज गति-मतिसे चलायमान रहता ही है। इसी तरह केदारनाथकी एक संकल्पपूरित ऊँचाईपर पहुँचकर अब हम नीचे उतर रहे थे, काफी नीचे हमें उतरना था। अतः पूर्वोक्त मतानुसार मनकी स्वाभाविक गतिमतिमें सहज भावसे हमारे पाँव जल्दी उठ रहे थे, हम विवेककी वेणीमें इन्हें थामते चलते थे। नीचे उतरनेके इस उद्योगमें हमारे भाव-विचार भी उतरते-चढ़ते, किंतु इतने नीचे नहीं जितने मैदानोंमें रहते समय। कदाचित् यह इस पुण्यभूमिका प्रभाव था। मार्ग चौड़ा था, अतः निष्कंटक वन-सृष्टिपर दृष्टि डालते, कभी पावन-सलिला मंदाकिनीके मादक, मन्थर, मधुर और तेज प्रवाहको निरखते, तो कभी कपोलोंको सहलाते मस्त पवनके झोंकोंमें उसके जलकणोंका स्पर्श-आनन्द लेते तथा

उसके मन्द-मन्द रवका मस्तीभरा सहगान-सा सुनते अघाते न थे। इन दृश्य और श्रव्य नैसर्गिक दृश्यों और कलाओंके क्रिया-कलापमें हमें चौंसठ कलाओंकी रसानुभूति होती और जब हमारा निर्धन नग्न मन इस नैसर्गिक निधिका सहज रूप पाता जो प्रकृति यहाँ दोनों हाथ लुटाती है तो उसे अनुभूति होती एक शाश्वत, सत्य और चिरंतन सुखलोककी। जान पड़ता हम किसी ऐसे दिव्य लोकमें विचरण कर रहे हैं, जो संसारियों-के लिये सुषुप्तिकी, ज्ञानियोंके लिये कल्पनाकी और योगियों-के लिये साधनाकी वस्तु हुआ करता है। हमें इस सुखकी यहाँ सहज अनुभूति हो रही थी; उसी तरह जिस तरह सुखद समीर जड और चेतन सभीके लिये सर्वहित-भावसे तत्पर समप्रबाहमें प्रवाहित सर्वसुलभ रहता है।

श्रीकेदारनाथपुरीसे तीन मील चलनेपर क्रमशः वर्षा बंद हुई। आज हमने ग्यारह मीलकी मंजिल तय कर सीतापुर-चट्टीमें रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन अर्थात् २७ जूनके प्रातःकाल चलकर हमने फाटा-चट्टीमें भोजनादि किये और अपराह्णमें गुप्तकाशी पहुँच गये। गुप्तकाशीमें रैन-बसेराकर भोर होते ही फिर चले और तीन मीलकी मंजिल नाप काकडा-गाढ़ पहुँचे, जहाँसे मोटरपर सवार हो उसी दिन संध्याको रुद्रप्रयाग पहुँच गये। बद्रीनाथ जानेके लिये केदारनाथसे रुद्रप्रयागतक लौटना पड़ता है और रुद्रप्रयागसे मोटरद्वारा लगभग पचास मील पीपलकोटीतक जाना पड़ता है। यों तो अब बदरीनाथके रास्तेमें जोशीमठ तक मोटर जाती है, किंतु सुना, पीपलकोटी और जोशीमठके बीचके मार्गमें कहीं कोई गिरिखण्डके आ विराजनेसे मोटर-यातायात अवरुद्ध हो गया है। अतः फिलहाल मोटर पीपलकोटी तक ही जाती थी।

दिनांक २९ जूनके प्रातःकाल बदरीनाथकी जय बोल हम रुद्रप्रयागसे मोटरमें पीपलकोटीके लिये सवार हुए।

उत्तराखण्डके चार धामोंकी यात्राके हमारे संकल्पके तीन चरण हम पूरे कर चुके थे, शेष और अन्तिम चतुर्थ चरणकी पूर्ति और उसकी प्राप्तिकी लालसाभरे मनसे आज हमारा हृदय ओत-प्रोत था।

जब हम अठारह मईको दिल्लीसे इस यात्राके लिये विदा हुए, उस समय ग्रीष्मका प्रखर आतप था। यमुनोत्तरीमें थोड़ी वर्षा हुई थी, गङ्गोत्तरीमें बिल्कुल नहीं। केदारनाथमें सर्वाधिक ऊँचाईके कारण वर्षा ऋतुके अलावा भी मेघोंका साम्राज्य रहता है और प्रायः पानी बरसा करता है। केदारनाथके अलावा मार्गमें जो इधर-उधर कुछ वर्षा हुई भी, उससे हमने जेष्ठ दोंगरे माना, किंतु बदरीनाथके पथपर चलते ही हमने देखा, ग्रीष्म समाप्त हो गयी और वर्षाका आरम्भ हो चुका है।

पीपलकोटी हम मध्याह्नमें पहुँचे। बदरीनाथधामकी यात्राका पीपलकोटी आज हमारा प्रथम पड़ाव था। पीपल-कोटी रुद्रप्रयागकी तरह ही इस मार्गका एक अच्छा कस्बा है। बाजार, डाक-तारघर और टेलीफोनकी भी व्यवस्था है। वनविभागीय विश्रामालय, औषधालय और मोटर-बसोंका एक बड़ा अड्डा है। वहाँ एक भेड़-पालक सरकारी संस्था है तथा रिंगालकी वस्तुएँ बनानेका काम होता है। यहाँ हमारे ठहरने-की व्यवस्था बदरीनाथ-मन्दिर-कमेटीके प्रवासगृहमें की गयी थी। आरामसे भोजन-भजन हुए और हम रात काटने पड़ रहे। भोर होते ही हमारी पद-यात्रा आरम्भ होनी थी। सदा-की तरह ब्राह्ममुहूर्तमें चार बजे हमलोग उठ बैठे, अपने कमरे-के पट खोले तो देखा जोरोंकी वर्षा हो रही है। हम यात्रापर सूर्योदयके पहले ही लगभग साढ़े पाँच बजे रवाना हो जाते थे। कुछ देर हमने पानी रुकनेकी प्रतीक्षा की, किंतु आसार रुकनेके दिखते नहीं थे। हम लोग बड़े पशोपेशमें पड़े। समूची यात्रामें आज पहला दिन था, जब प्रातःकाल हमें इस तरह वर्षाका सामना करना पड़ा हो। अनेक जगह अनेक बार पानी गिरा है, लेकिन कभी तीसरे पहर, कभी रातमें। केदारनाथसे लौटतेमें गिरा था, यहाँ तो आगे बढ़नेसे ही रोक रहा था। बदरीनाथधामकी प्रथम दिनकी पदयात्रापर ही प्रकृति-के इस प्रकोपपर हम कुछ चिन्तित हो गये। 'प्रथमग्रासे मक्षिकापाते' वाली बात थी। चाहते तो बरसते पानीमें निकल पड़ते, पर यह बात दलके दो-चार व्यक्तियोंके लिये ही सम्भव थी, समूचे दलके लिये नहीं। फिर गोविन्ददासकी भावज यहाँ पहुँचते ही कुछ अस्वस्थ भी हो गयी थीं, अतः उनके कारण तथा अन्य साथियोंके कारण बरसते मेहमें यात्रापर चलाना सम्भव न था। पानी इतना तेज था कि चलनेकी कौन कहे उरिया लाँघनेकी हिम्मत न होती। फिर पीपलकोटीकी ऊँचाई ४३५० फुट होनेके कारण शीत भी अधिक थी। अतः इस धोकम-धाकी स्थितिमें कभी बाहर बरामदेमें आते, कभी फिर कमरेमें जाते साढ़े पाँच बज गये, पानीका वेग कम न हुआ। हमें निश्चय हो गया आज हमारा निकलना न हो सकेगा। बारी-बारी सभी नित्यकर्मसे निवृत्त हो ही चुके थे, लाचार हिम्मत हार पस्तदिल, चूँकि सदाकी तरह पदयात्रापर चलनेको सबने अपनी-अपनी कमर कस ली थी, बँधे बिस्तरोंका, जो

अबतक बँध चुके थे, सहारा ले कमरेमें बैठ गये। छः बजनेको थे, देखा क्रमशः पानी कम हो रहा है और कम होते-होते साढ़े छः बजे वर्षा बिलकुल थम गयी। करीब एक घंटे देरसे अपनी-अपनी लाठी थाम भगवान् बदरीविशालकी जय बोल सब पदयात्रापर निकल पड़े।

वर्षा ऋतुके आरम्भका यह दृश्य अद्भुत था। पहले जो बादल घटाटोपके सदृश छाये हुए थे, उनके खण्ड हो-होकर अब उनकी दौड़-भाग आरम्भ हुई। यह दौड़-भाग बिना विश्राम किये एक शिखरसे दूसरे शिखरपर होती। फिर इस दौड़में बादलोंके कई रूप बनते। कभी हाथी; कभी सिंह, कभी मृग, कभी वाराह, तो कभी भालूका, जो भालू मदारियोंके भालुओंके समान कभी-कभी दो पैरसे खड़े भी हो जाते थे। आकाशमें हमने अनेक बार बादलोंकी ये विभिन्न आकृतियाँ देखी थीं पर पहाड़ोंकी चोटियोंपर नहीं। गिरिश्रृङ्गोंपरकी वन्य जीवोंकी ये आकृतियाँ और उनकी यह दौड़-भाग एक अद्भुत दृश्य था। थोड़ी देरमें यह दौड़-भाग बंद हुई और अब मेघोंके इन टुकड़ोंने हिमवान्‌के शिखरोंपर ही अपना डेरा डाल दिया। मानो इस दौड़से थककर अब वे विश्राम कर रहे हों। मेघोंका यह कौतूहलपूर्ण दृश्य देखकर हमें याद आ गयी कविवर सुमित्रानन्दन पंतकी निम्न पंक्तियाँ—

पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेष

तथा संस्कृतकी यह उक्ति भी—

**पदे पदे यन्नवतामुपैति**
**तदेव रूपे रमणीयतायाः।**

कुछ दूर कुछ शिखरोंपर धूम-सा उठ रहा था। संस्कृतकी एक उक्ति है—'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः' हिन्दीमें भी एक कहावत है 'बिना आगके धुआँ नहीं निकलता'। परंतु यह धूम इस उक्ति और कहावतको मिथ्या सिद्ध कर रहा था। जहाँ यह धुआँ था, वहाँ आग न थी। यथार्थमें ये अग्निसे उत्पन्न धूम न होकर पानीके बादल थे। एक उष्ण दूसरे शीतल। दोनों विरोधी गुणोंवाले होनेपर भी रूपमें एक-से। मानव-आकृतियोंकी तरह एकरूपता किंतु भावों, विचारों और कृतियोंमें विविधताके ये मेघ-दल प्रतीक बन गये थे।

पीपलकोटीसे बदरीनाथ ३८ मील पड़ते हैं। रास्ता यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरीके सदृश बीहड़ नहीं। चढ़ाव होते हुए भी मार्ग यद्यपि केदारनाथके सदृश तो अच्छा नहीं, पर बुरा भी नहीं है। परंतु इस मार्गकी हिमवान्‌की शिखरावली यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी और केदारनाथके मार्गकी शिखरावलीसे सर्वथा भिन्न है। पीपलकोटीसे चलनेके बाद कुछ दूरतक चीड़के वृक्ष मिलते हैं, परंतु चीड़का वैसा घना जंगल नहीं, जैसा यमुनोत्तरीके मार्गमें है। गङ्गोत्तरीके सदृश देवदारका भी इस मार्गमें वन नहीं है। यत्र-तत्र देवदारके फैले हुए तथा सुरोंके सदृश सीधे चाहे कुछ वृक्ष हों। केदारनाथके रास्तेके समान इस मार्गमें वृक्षों, पौधों, लताओं और झाड़ियोंकी सघन हरियाली अथवा केदारनाथके समान पुष्पोंके पौधे भी नहीं हैं। न इस मार्गकी गङ्गा अलकनन्दापर वैसी सघन विटप-लताओंकी कुञ्जोंवाली छाया ही है। हाँ, इस ओरके इन वृक्षोंमें हमें खजूरके कुछ वृक्ष देखकर आश्चर्य अवश्य हुआ।

पीपलकोटीसे नौ मील चलकर हम गुलाबचट्टीमें भोजन करने ठहरे। गुलाबचट्टी पहाड़की एक चोटीपर समुद्रसतहसे ५३०० फुटकी ऊँचाईपर स्थित पीपलकोटीके बादका हमारा पहला मुकाम था। अपराह्णमें चार मील और चल हमारा अगला मुकाम कुमारचट्टीमें था। यहीं रात्रिवास करनेकी बात थी। परंतु आज एक नयी घटना घटित हुई।

हमारे दलके लोग फुट फेल होकर चलते ही थे। मुकामसे प्रस्थानके पूर्व सब लोग एकमत हो अपने पड़ावका निश्चय करते यद्यपि जो गोविन्ददासके कारण निश्चित कार्यक्रमके अनुसार ही होते किंतु कभी-कभी इसमें भी अपवाद हो जाता। अतः सदाकी तरह पीपलकोटीसे प्रस्थान करनेके पूर्व सभी साथियोंको नौ मील आगे गुलाबचट्टीमें दोपहरके भोजनकी तथा चार मील आगे कुमारचट्टीमें अपने रात्रि-मुकामकी जानकारी दे हम आगे बढ़े थे। मार्ग अच्छा था, अतः कोई पाँच घंटेमें ९ मीलकी यात्रा कर हम गुलाबचट्टी पहुँच गये। स्नानादि किये, पण्डितने भोजनोंकी तैयारी की। पड़ावपर पहुँचनेके बाद हमारे सभी साथी, जो अक्सर मार्गमें बिछुड़ जाते थे, इस प्रारम्भिक तैयारीके होते-होते एकत्रित हो जाते थे। किंतु इस बार काफी विलम्ब हो जानेपर भी हमारे साथकी दो महिलाएँ जब यहाँ नहीं पहुँचीं तो हमलोग चिन्तित हो उठे। इस अप्रत्याशित देरीसे हमलोग थोड़े नहीं, पर्याप्त चिन्तित थे। ऐसे अवसरोंपर स्वजनोंसे सम्बन्ध-विच्छेद होने और उनके कोई समाचार न मिलनेपर विशेषकर ऐसे स्थलोंपर हमारे मनको अमाङ्गलिक और अनिष्टसूचक विचार आ घेरें, यह स्वाभाविक ही होता है। बरसात शुरू हो चुकी थी, रास्तोंपर फिसलन, गहरे खंदक, भयानक प्रवाहयुक्त सरिता अलकनन्दा और टूटते पहाड़ हमारी दृष्टिमें एक दृश्यवत् घूमने लगे। दोनों ही महिलाएँ यद्यपि हमारी आत्मीय नहीं

थीं, पर उतनी दूरकी भी नहीं, जो सम्बन्ध केवलमात्र परिचयकी वस्तु हो। आत्मीय न होते हुए भी काफी निकटका मामला था। इनमें एक महिला थी गोविन्ददासके सद्गुरु मुनीमकी पत्नी तथा दूसरी श्रीमती गोदावरी देवीकी परिचारिका श्यामा। हमें उत्तराखण्डकी यात्रा करते लगभग डेढ़ माह हो गया था, इन बीते दिनोंमें हमारी मानसिक रचना कुछ इस प्रकारकी हो चुकी थी कि बहुत दूरतक अपने घरबार और परिवारको हम भूल-सा गये थे और स्वतन्त्र पक्षियोंकी तरह केवल अपने दलके साथ पूर्ण बल और वेगसे एकके बाद एक शैल-शिखर पार करते अपने गन्तव्यपर चल रहे थे। इस मंजिलमें हमें प्रधानतया दो बातोंका ही विशेष ध्यान रहता, एक अपने लक्ष्यका, दूसरा अपने सभी साथियोंके सुख-स्वास्थ्य-का। जैसा कि ऊपर कहा है, अपने मनोरथके चार चरण या पदार्थोंमें हमें तीन प्राप्त हो चुके थे, चौथेकी प्राप्तिके हम निकट थे। किंतु हमें इस घटनासे आज ऐसा जान पड़ा, जैसे तीसरी सीढ़ीसे उतरते ही और चौथी सीढ़ीपर पाँव बढ़ाते ही मानो किसीने हमारा पाँव पकड़ लिया। सभीके मन चिन्ता और विषादकी छायासे म्लान थे। क्या हो गया भगवान्, कुछ समझमें न आता। कोई भूलने-भटकनेकी बात कहता तो बहुमतसे सभी इस विचारको निर्मूल कर देते। श्यामाने तो दो वर्ष पूर्व ही तो उत्तराखण्डकी यात्रा की थी और अभी तककी हमारी पिछली तीन धामोंकी यात्रामें वह अनेक बार मार्गमें आगे-पीछे हुई थी पर भूली-भटकी कहीं नहीं। अतः बदरीनाथके इस मार्गमें इनके भूलने-भटकनेकी सम्भावनाका विचार तो हमारे मनमें उठता पर श्यामाके कारण इस विचार-को अधिक प्रश्रय नहीं मिलता। ज्यों-ज्यों प्रतीक्षाका समय बढ़ता, हम लोगोंकी चिन्ता प्रगाढ़ होती जाती। साथियोंको, कंडी-डंडीवाले तथा भारवाहकोंको यहाँ-वहाँ भेजा, पंडाजीको आगे कुमारचट्टी भेजा, किंतु सभी थके पाँव और रीते हाथ वापस लौटे, कहीं कोई पता नहीं। इन लोगोंके वापस लौटने-पर और सब लोगोंके मन खेदसे भर गये। स्नानादि तो सबेरे हो गये थे पर खाया-पिया किसीसे न गया। दैवयोगसे जब इस विचारसे कि अब आगे बढ़नेके सिवा और कोई उपाय नहीं, सब लोग चलनेके मूडमें बैठे थे, कुछ यात्री जो बदरी-नाथसे लौट रहे थे, हमारी चट्टीके निकट आये और उन्होंने हमें संवाद दिया कि दो औरतें मार्गमें हमें मिली थीं और वे जोशीमठमें ठहरेंगी। यह संवाद मिलते ही हमारे मन-को राहत मिली और खिन्न मनसे हम लोग आगे बढ़े। ये लोग कैसे जोशीमठ पहुँचीं, कहाँ क्या खाया-पीया होगा, कहाँ ये ठहरी होंगी, आदि बातोंकी चिन्ता अभी भी हमारे मनमें बनी रही और इसी चिन्ताका भार लिये हमलोग आगे चल पड़े। यद्यपि हमारा आज रात्रि-मुकाम कुमारचट्टीमें था, पर उक्त महिलाओंकी कृपाके कारण अब हमें कुमारचट्टीकी चार मीलकी नहीं, जोशीमठकी दस मीलकी मंजिल नापनी थी। यों ही नौ मील आज चल चुके थे, अब हमने दस मीलका और संकल्प किया और भगवान् बदरीविशालकी जय बोल चल पड़े। लड़खड़ाते पाँव रात्रिके आठ बजे जोशीमठ पहुँचे और जोशीमठमें प्रवेश करते ही अब इनकी यहाँ खोज प्रारम्भ की। कोई आधा घंटे तलाश करनेपर बाबा काली कमलीवालोंकी धर्मशालामें दोनों देवियाँ मिल गयीं। इस मुलाकातपर हमें खुशी तो थी ही, पर कुछ नाराजी भी हुई। राजी-खुशी पूछनेके बाद हमने कैफियत भी माँगी, उनके इस तरह जोशीमठ आनेके लिये। बात यह हुई, पीपलकोटीसे जोशीमठ तक मोटर-मार्ग बन गया है। इन लोगोंने पीपल-कोटीसे जो मोटरका मार्ग पकड़ा फिर न कहीं मुड़नेकी, न देखनेकी और न पूछनेकी कोई कृपा की। पीपलकोटीसे ९ मीलपर गुलाबचट्टीके लिये ऊपर पहाड़पर एक मार्ग जाता है, वह ये पारकर मूडमें आगे बढ़ती गयीं और जब काफी आगे निकल आयीं तो फिर उन्होंने लौटना अभीष्ट नहीं समझा। बस, इस जरा-सी नासमझी या असावधानीके कारण कितना क्लेश और कष्ट उठाना पड़ा इन्हें भी, और निर्विवादरूपसे इनसे भी अधिक हमलोगोंको अनन्त अव्यक्त अनिष्टकारी आशंकाओंका। असावधानी तो असावधानी ही है, छोटी हो या बड़ी। यह एक ऐसी तन्द्रा है, जिसका परिणाम मौतसे भी भयंकर होता है। आज हमें पहाड़के इस दुर्गम मार्गकी १९ मीलकी मंजिल नापनी पड़ी, वह भी शिथिल अंग और विवश मनसे। जोशीमठ पहुँचकर ज्यों ही बिस्तर खोले, सब-के-सब बिस्तरोंपर ऐसे पड़ गये, जैसे किसी मेजर ऑपरेशनसे मुक्त बेहोश रोगीको कोई ऑपरेशन टेबिलसे उतार स्टेचरपर लिटा दे। अबतककी यात्रामें हम पाँच मीलसे बारह मीलतक नित्य चले थे, आजकी हमारी यह मंजिल उन्नीस मीलकी हुई। अतः मार्गकी कठिनता और दुर्गमता आज हमारे अंग-अंगमें समा गयी थी। दूसरे दिन प्रातःकाल हमारा आगे बढ़ना नहीं हुआ।

# श्रीरामचरितमानसकी एक अर्द्धाली

( लेखक—श्रीनर्वदाप्रसादजी वर्मा )

मरम बचन सीता जब बोला । हरि प्रेरित लछमन मन डोला ॥

उपर्युक्त अर्द्धाली श्रीरामचरितमानसमें अरण्यकाण्डके अन्तर्गत श्रीगोस्वामीजीद्वारा कही गयी है । कुछ सज्जनोंका यह मानना है कि यह पाठ ठीक नहीं है । पाठ होना चाहिये—

मरम बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लछमन मति डोली ॥

''उनका कहना है कि सीता 'बोला' में स्त्रीलिङ्ग कर्ताकी पुँल्लिङ्ग क्रिया व्याकरणकी दृष्टिसे दोषयुक्त है । साथ-साथ 'मन डोला'का भाव भी दूषित है । श्रीलक्ष्मणजीके सदृश संयमी पुरुषका मन अपनी माताके तुल्य बड़े भाईकी स्त्रीके लिये डोल गया । यह मानना सर्वथा अनुचित है । मन डोलनेका साधारण एवं व्यापक अर्थ 'मनका विकारी होना' है । श्रीलखनलालजीका मन निर्विकार था । इसकी साक्षी स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जनकपुरीमें पुष्प-वाटिकाके प्रसङ्गमें दे चुके हैं । अतः 'सीता बोली' और 'मति डोली' पाठ ही सही है । इससे स्त्री-लिङ्ग कर्ताकी स्त्री-लिङ्ग क्रिया होनेसे व्याकरण-दोष भी मिट जाता है और लक्ष्मणजीके मनमें विकार आ गया, यह दोष भी नहीं रह जाता । 'मति डोली' से यह अर्थ होता है उनकी बुद्धि यह निर्णय न कर सकी कि 'रहूँ या जाऊँ ?'

और भी एक दलील दी जाती है । ''लक्ष्मणके समान महापुरुषके लिये जो ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामकी धर्मपत्नी सीताको माता मानते थे, जिन्होंने कभी आँख उठाकर सीताके मुखकी ओर नहीं देखा, केवल उनके चरणोंको ही देखा, यह कहना कि एकान्तमें उन श्रीसीताजीपर 'मरम वचन' सुनकर उनका मन डोल गया या विकारग्रस्त हो गया । कितना बड़ा पाप है, कितना अक्षम्य अपराध है और कितनी जघन्य कल्पना है !''

आप अब इस अर्द्धालीपर विचार कीजिये ।

'मरम बचन सीता जब बोला । हरि प्रेरित लछमन मन डोला ॥'

—इसका यदि अर्थ किया जाता है कि 'जब सीता ( मरम ) बोला, तब लछमनका मन प्रभुकी प्रेरणासे डोल गया' तो इस अर्थमें 'मरम' और 'बोला' के बीचसे बचन शब्द ही छूट जाता है और इसीसे सारी गड़बड़ी होती है । यदि इसका यह सही अर्थ किया जाय कि 'जब सीताने मरम बचन बोला तब लछमनका मन हरिकी प्रेरणासे डोल गया ।' तो स्पष्ट हो जायगा कि 'मरम बचन' पुँल्लिङ्ग है, इसलिये उसकी क्रिया पुँल्लिङ्ग भी सर्वथा सही हुई । इसके अतिरिक्त माता सीताने भी स्वयं लक्ष्मणको निर्दोष बताया है—

'हा लछमन तुम्हार नहिं दोषा । सो फल पायेउ कीन्हेउ रोषा ॥'

तथा श्रीसीताजीने यह स्वीकार किया है कि मैंने लक्ष्मणको जबर्दस्ती भेजा है—

'सुनहु तात कोउ तुम्हहिं पुकारत प्राननाथकी नाईं ।'

'कह्यौ लखन, हत्यौ हरिन, कोपि सिय हठि पठयौ बरिआईं ॥'

( गीतावली )

जब हरण हो गया, तब जानकी स्वयं पश्चात्ताप करती हैं कि मैंने लक्ष्मणसे कटु वचन कहे और रेखा लाँघी—

'कहे कटुबचन रेख नाँघी मैं तात छमा सो कीजे ।

देखि बधिक बकराज मरालिन लषन लाल छिन लीजे ॥'

अतः स्पष्ट है कि मन डोलनेका अर्थ मनका विकारी होना कदापि नहीं माना जा सकता । अब यदि कहा जाय कि—

'मरम बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लछमन मति डोली ॥'

—पाठ ही मान लिया जाय तो क्या दोष है ? क्या इसमें कोई हानि है ?' तो इसका विनम्र उत्तर यह है कि 'मन' और 'मति' में बड़ा अन्तर है । मन स्वभावसे चञ्चल होता है तथा उसके डोलनेसे कोई विशेष हानि नहीं है; क्योंकि उसका स्वभाव ही डोलना संकल्प-विकल्पात्मक ही है । यह मन बुद्धिके अधीन रहता है । अतः डोलनेपर बुद्धिके द्वारा इसे सँभाला जा सकता है । परंतु 'मति'—बुद्धि डोल जाती है, तब तो बड़ा गजब हो जाता है । गीतामें भगवान् कहते हैं—

**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥**

( गीता २ । ६३ )

बुद्धिके नाश होने—डोलनेसे तो सर्वनाश ही होता है । मनुष्य अपने श्रेय-साधनसे ही गिर जाता है । अतः यदि 'मति डोली' पाठ दिया जाय तो लक्ष्मणको अपने श्रेय-साधनसे गिरा माना जायगा, जो सर्वथा असम्भव है । लक्ष्मण-जैसे महापुरुष अपने श्रेय-साधन-से कैसे गिर सकते थे ? जब केवल मनके डुलानेके लिये भी उन्हें भगवान्को प्रेरित ( हरिप्रेरित ) करना पड़ा, उनकी 'मति' कैसे डोल सकती थी ? 'मति डोली' पाठ तो लक्ष्मणकी स्थितिको सर्वथा गिरा देता है । अतः यही सिद्ध होता है कि केवल ऊपरसे व्याकरण-दोष जानकर ही लोगोंने 'बोली' और 'डोली' पाठकी तुक मिला दी । यह नहीं सोचा कि ऐसा करके हम लक्ष्मणके साथ कितना घोर अन्याय कर रहे हैं !

मन तो कर्मचारी-संघका प्रधान है और बुद्धि न्याय-

विभागकी अध्यक्षा है। मन उसके निर्णयपर ही चलता है। इसीसे बुद्धिको मनीषी भी कहते हैं। अतः यह ध्यान देनेकी बात है कि जब न्याय-विभाग ही डोल जायगा तो क्या होगा। इसपर पाठक स्वयं विचार करें। अतः यहाँ 'सीता बोली' पाठ आदरसूचक नहीं है तथा न उचित जान पड़ता है।

उपनिषदोंमें कहा है कि बुद्धि सारथी है ( बुद्धिं तु सारथिं विद्धि ), मन लगाम है। लगाम यदि इधर-उधर हो तो सारथी उसे खींचकर ठीक कर सकता है। पर यदि सारथीका ही मतिभ्रम हो जाय तो फिर रथका तो नाश ही होता है।

साथ-ही-साथ यह बात भी विचारणीय है कि गोस्वामीजीका 'शाब्दिक चमत्कार' भी इस 'मति डोली' पाठसे उड़ जाता है। 'लछमन' शब्दका अर्थ है जिसके 'मनका लक्ष्य' अटल हो या मन जिसका अपने लक्ष्यपर अटल हो। यह लछमनका 'ऐश्वर्य-सूचक' नाम है। माधुर्यमें 'लखन' भी कहते हैं। गोस्वामीजीने जहाँ मनके लक्ष्यपर ध्यान दिया, वहाँ प्रायः 'लछमन' शब्द दिया और जहाँ दूसरेके मनकी बात लछमन-द्वारा जनायी, वहाँ 'लखन' शब्द कहा है। यथा—

'लखन लखेउ रघुबंस मनि ताकेउ हरको दंड।'

अतः जिन गोस्वामीने ऐसे 'चमत्कारपूर्ण' शब्द रक्खे हैं, वे 'लछमन मति डोली' कैसे लिख सकते हैं; इसलिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि—

'मरम बचन सीता जब बोला। हरि प्रेरित लछमन मन डोला॥'

—पाठ ही सही है, न्यायसंगत है तथा निर्दोष है।

इस प्रकार इसमें जरा भी व्याकरण-दोष नहीं है। कोई यदि यहाँ व्याकरणकी उपेक्षा मानते हैं तो उन्हें अन्य प्रसङ्गोंकी गोस्वामीजीकी ऐसी ही अर्द्धालियोंपर ध्यान देना चाहिये।

१. प्रश्न उमाके सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥

२. दूसर बर मागउँ कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

३. धुआँ देखि खरदूषन केरा। सूपनखा तब रावन प्रेरा॥

पहली अर्धालीमें 'प्रश्न पुँल्लिङ्गकी क्रिया स्त्रीलिङ्ग—'सुहाई' 'भाई' है, दूसरीमें 'मनोरथ' पुँल्लिङ्गकी स्त्रीलिङ्ग 'मोरी' तथा तीसरीमें सूपनखा स्त्रीलिङ्गकी क्रिया पुँल्लिङ्ग 'प्रेरा' में स्पष्ट व्याकरण-दोष दिखायी देता है। ऐसी और भी कई अर्द्धाली हैं। परंतु वास्तवमें इनमें कोई दोष नहीं है, केवल समझका अन्तर है। बस, यही हाल 'सीता बोला' का है। जिसका अर्थ होगा कि 'जब सीताजीने मरम वचन बोला—कहा, तब हरिकी प्रेरणासे लछमनजीका मन डोल गया।' यदि 'मरम बचन' न बोला जाता तो मन डोलनेका प्रश्न ही नहीं था। यह स्पष्ट है कि सीताजी पहलेसे कह रही थीं परंतु जब 'एक मरम बचन' कहा तब लछमनका मन हरि-प्रेरणासे डोला। वैसे लछमनमें मनको डुलानेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं थी। इसलिये 'हरिप्रेरित' कहा गया है। वाल्मीकिजी स्पष्ट लिखते हैं कि वह वचन लक्ष्मणजीको बाणके समान लगा। अतः यहाँ 'मरम बचन 'पुँल्लिङ्ग कर्ताकी क्रिया पुँल्लिङ्ग होना 'डोला' उचित ही है। इसके अतिरिक्त, यहाँ मन डोलनेका अर्थ 'मनका विकारी होना' नहीं है, और न यहाँ लक्ष्मणजीका मन विकारी हुआ ही है। यहाँके प्रसङ्गपर जरा ध्यान दीजिये—

जब भगवान् श्रीरामने मारीचको बाण मारा तो वह लछमनका नाम लेकर पुकारकर गिर गया, इसपर माता सीताजीने कहा—

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछमन बिहँसि कहा सुनि माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

रेखाङ्कित अर्द्धालीसे स्पष्ट है कि लक्ष्मणके मनका लक्ष्य क्या था और हिरन मारनेको जाते समय भगवान् श्रीराम स्वयं लक्ष्मणको आज्ञा दे गये थे।

प्रभु लछमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥

अतः लक्ष्मण अपने कर्तव्यपर अटल दृढ़ थे और इस कर्तव्यसे लक्ष्मण हटनेवाले नहीं थे, न लक्ष्मणका मन ही डोल सकता था, इसलिये भगवान्‌को ही लक्ष्मणके मनको प्रेरित ( 'हरिप्रेरित' ) करना पड़ा। तब कहीं वे माता सीताको छोड़कर गये। अतः यहाँ 'मन डोला' का अर्थ होगा कि 'भगवान्‌की प्रेरणासे वे प्रभुकी आज्ञाका पालन न कर सके, और भगवान् श्रीराममें जो निष्ठा थी, वह भी उस समय पूरी न रह सकी।' अतः मन डोलनेका अर्थ विकारी होना कदापि नहीं है। और यदि यह अर्थ माना जाय कि बुद्धि यह निर्णय देनेमें विचलित हो गयी कि 'रहूँ या जाऊँ' तो कहना होगा कि 'जब निश्चय ही नहीं हुआ तो वे गये क्यों? अतः बुद्धि डोल गयी' अर्थ गलत है।

प्राचीन तथा अर्वाचीन अधिकांश प्रतियोंमें भी यही पाठ है। केवल चार-पाँच प्रतियोंमें ऊपरी दृष्टिसे व्याकरण-दोष जानकर टीकाकारोंने 'बोली' 'मति डोली' पाठ कर दिया है।

# वैज्ञानिक संजीवनी ( Vaccine Honey )

( लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा )

[ गताङ्क पृष्ठ १२५२ से आगे ]

## तबसे अब

भारतवर्षमें अंग्रेजोंकी कम्पनीकी स्थापना सन् १६०० में हो गयी थी और तबसे वे मजेमें फूट डालकर लाभ उठानेकी कूटनीतिसे ढाई सौ वर्षतक व्यापार करते हुए अपनी जमीदारी भारतमें बढ़ाते रहे, परंतु इतने कालतक भारतीयोंने कोई व्यापक विरोधी सक्रिय आन्दोलन न करके १८५७ में ही विद्रोह क्यों किया ? इसकी धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। लार्ड राबर्ट्स चालीस वर्षतक भारतमें रहे और सन् १८५७ की क्रान्तिमें वे भारतमें मौजूद थे। वे उस समयके प्रामाणिक इतिहास-लेखक माने जाते हैं। उन्होंने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'भारतमें चालीस वर्ष' में पृष्ठ ४३१ पर गदरका मूल कारण बताते हुए लिखा है—"मिस्टर फॉरेस्टने भारत-सरकारके कागजोंकी हालमें जो जाँच की है उस जाँचसे सिद्ध है कि कारतूसोंके तैयार करनेमें जिस चिकने मसालेका उपयोग किया जाता था, वह मसाला वास्तवमें दोनों निषिद्ध पदार्थों—गायकी चर्बी और सूअरकी चर्बी मिलाकर बनाया जाता था और इन कारतूसोंके बनानेमें सिपाहियोंके धार्मिक भावोंकी इतनी उपेक्षा की जाती थी जिसका विश्वास नहीं होता।"

इतिहासकारोंने इस विद्रोहकी जड़ इस प्रकार बतायी है कि पश्चिम बंगालमें दम-दममें स्थित गोला-बारूदके कारखानेमें एक खलासीने एक फौजी ब्राह्मणके लोटेसे पानी पीना चाहा तो ब्राह्मणने जातिभेदके कारण इनकार कर दिया। अपमानित खलासीने कहा कि 'आज तुम जातिभेदके कारण भले ही हमें पानी न पिलाओ, किंतु अब शीघ्र ही जब गायकी चर्बी और सूअरकी चर्बी सनी कारतूसोंका उपयोग सब सैनिक करेंगे तो हिंदू-मुसलमान सभीके भेद मिट जायँगे और सभी घुल-मिलकर एक हो जायँगे।' उस समयके लार्ड कैनिंगने इस खबरको झूठ घोषित किया परंतु फौजियोंपर इसका कोई असर न हुआ; क्योंकि यह खबर सच्ची थी और बातों-ही-बातोंमें यह बात फौजोंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानोंमें सर्वत्र फैल गयी। हिंदू गायको माताके समान पूजते हैं और मुसलमान सूअरसे घृणा करते हैं, दोनों वर्ग इस जबर्दस्त नीतिसे अपना धार्मिक अपमान जानकर विद्रोह करनेको उठ खड़े हुए। उस समयका हाल इतिहासकार श्रीजस्टिन मेकार्थीने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ "हमारे ही समयका इतिहास" में लिखा है—'चर्बी-सनी कारतूसोंके झगड़ेमें एक आकस्मिक चिनगारी धार्मिक और राष्ट्रीय युद्धके विस्फोटक भावोंमें लग पड़ी' जिससे हिंदू और मुसलमान दोनों ही अंग्रेज सरकारके दुश्मन हो गये। यह विद्रोह लगभग डेढ़ सालतक चला, जिसमें लोग गाँव, नगर अपने धन-धंधे और परिवारको छोड़कर भागे, हजारों नर-नारी और बच्चोंकी हत्याएँ हुईं और मनमाने दुष्ट कर्म और क्रूरताएँ हुईं। स्वतन्त्रताकी यह खिचड़ी एक संगठनसे एक ही भाँडेमें पकानेके लिये हिंदू मुस्लिम दोनों भाइयोंने सन् १८५७ में धर्मके चूल्हेमें जो आग सुलगायी थी, उसको फिरंगी सरकारने अपनी कूटनीति और दमन-युद्धसे पत्थर पटककर तत्काल तो बुझा दिया, परंतु वह आग दबी रही, जिंदा रही और इन अनेक समस्याओंपर विचार और उसे कार्यान्वित करनेकी योजनाके लिये एक अंग्रेज उदार विचारक श्रीह्यूमके प्रयत्नोंसे, एक बंगाली मेधावी वकील श्रीबनर्जीकी अध्यक्षतामें बम्बईमें १८८५ में शिक्षित प्रतिष्ठित लोगोंकी एक मिली-जुली 'कांग्रेस' की बैठक हुई और तबसे प्रतिवर्ष अधिकाधिक लोग संगठित होकर

---

"1. The recent researches of Mr. Forest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridges was actually composed of the objectionable ingredients—cows' fat and lard and that incredible disregard of soldiers' religious prejudices was displayed in the manufacture of these cartridges."—*Forty years in India* by Lord Roberts.

2. "The quarrel about the greased cartridges was but a chance spark flung in all the combustible material—a national and religious war."—"*History of our own times*" by Justin Mecarthy.

स्वतन्त्रताकी यह खिचड़ी पकानेके लिये डंडे चूल्हेमें ये लोग हल्की-हल्की फूँक देने लगे। और जो फिरंगीलोग गाय और सूअरसे घृणा न कर दोनोंको हजम कर जाते हैं, निश्चय कर रहे थे कि अरे अन्धविश्वासी भारतीयो! तुम धर्मान्ध होकर जिससे घृणा करते हो, वही वस्तु तुम्हें शीघ्र ही अधिक घृणित रूपमें इस तरह खिलायँगे और तुम्हारे खूनमें घोलेंगे कि तुम्हें पता भी न चलेगा और तुम स्वयं ऊँची कीमत देकर खरीदोगे। उस समयतक अंग्रेज वैद्य एडवर्ड जेनर (१७४९–१८२३) का चेचकनिरोधी टीका गायके मवादसे बनकर प्रचलित हो चुका था और उस घृणित विज्ञानको इंगलैंडमें १८५३, १८६७ और १८७१ में कानूनद्वारा बच्चों और जनतामें 'टीका' द्वारा ठूँस दिया गया।

## अन्धानुसरण विज्ञान

इस अन्धविज्ञानका अनुसरण अन्य देशोंने भी किया। लीग ऑफ नेशन्सकी हेल्थ आर्गनाइजेशनकी रिपोर्टोंसे पता चलता है कि जिन देशोंने इस घृणित पद्धतिको नहीं अपनाया, उनके यहाँ चेचककी अपेक्षा अन्य देशोंमें इस टीकेकी प्रथासे चेचक रुकनेके बदले अधिक फैल गया जहाँ कि अनिवार्यरूपसे चेचकका टीका लोगोंको बार-बार लगाया गया था।

पुर्तगालमें २ मार्च १८९९में चेचकका टीका लगानेका कठोर कानून बना, परंतु जनतामें उसके प्रचारकी घोषणा नहीं हुई थी, लोग अपनी मर्जीसे टीका लगवाते थे। परंतु २६ मई १९११ को वहाँकी जनतन्त्री सरकारने इसकी घोषणा करके २३ अगस्त १९११ को इसे अनिवार्य करके प्रचलित कर दिया। जिसमें एक बार टीका लगानेसे सात वर्षतक चेचक न होनेकी बात बतायी गयी थी। यह क्रम चलते-चलते १९१९में ६० लाख जनतामें चेचकका टीका लगानेपर टीकेके कारण ८८६४ लोगोंकी चेचकसे मृत्यु हुई और आगे भी प्रतिवर्ष १९२५ से ३३ तक वहाँ टीका लगवानेवालोंकी प्रतिवर्ष मृत्यु-संख्या ९४ से लेकर १०३० तक रही।

मेक्सिकोमें चेचकसे मृत्यु होनेका भाव दुनियामें सबसे ऊँचा है, वहाँ यह कानून १५ अक्टूबर १९२९ को बना जिससे हरेक व्यक्तिको दो बार टीका लगवाना अनिवार्य हुआ। बच्चोंको जन्मसे चार मासके अंदर टीका लगाना और प्रति पाँचवें वर्ष हरेक व्यक्तिको टीका लगाना अनिवार्य हुआ। सब फौजियोंको भी टीका लगता है तथा किसी भी उद्योग-धंधेमें लगे व्यक्तियोंको इससे मुक्ति नहीं दी गयी है।

फिर भी वहाँ टीका लगानेपर भी चेचकसे १९२२ से १९३२ तक, ११९७३६ लोग मरे।

इटलीमें भी चेचकका टीका लगानेका कठोर कानून है। लीग ऑफ नेशन्सकी बारहवीं बैठकमें हेल्थ कमेटीकी रिपोर्ट पेश हुई थी, जिसमें यूरोपमें टीका-प्रचलित देशोंकी अपेक्षा इटलीमें टीका लगानेपर भी चेचकसे होनेवाली मृत्यु-संख्याका भाव सबसे ऊँचा था।

जापानमें १८४९ में ही टीका सरकारद्वारा स्वीकृत होकर, १८७४में कानून बन चुका था। क्रमशः १८७६ तथा १८८५ में अधिक कठोर कानून बनाये गये कि हरेक बच्चेको जन्मसे एक वर्षके भीतर चेचकका टीका लगवाना तथा प्रति पाँच या सात वर्ष टीका लगवाना अनिवार्य हुआ। १८८६में जापान टीका लगवानेमें दुनियाके सब देशोंसे आगे था। उस समय भारतमें इसका उतना प्रचार न था। लंदनमें १९०६ में 'इन्कारपोरेटेड सोसायटी ऑफ मेडिकल आफिसर ऑफ हेल्थ'की रजतजयंती-समारोहके भोजमें छोटे नवाब टकाकीने बड़ी शेखीसे कहा था कि जापानमें हरेक बच्चेका जन्मसे छः महीनेके भीतर चेचकके टीकेसे रोगनिरुद्ध किया जाने लगा है। छः वर्षकी आयुमें स्कूल-प्रवेशके समय पुनः टीका लगाया जाता है और सेनाप्रवेशके समय पुनः टीका लगता है तथा चेचक फैलते समय पुनः टीका लगाया जाता है। इस प्रकार जीवनमें बार-बार टीका लगता है। इन महाशयका गर्व दो सालमें ही चूर्ण हो गया। १८०७५ लोगोंको इतना टीका लगानेपर भी चेचक हुआ, जिसमें ५८३८ की मृत्यु हो गयी और जितना ही अधिक टीका लगाया जाता, लोगोंको चेचक होता और वे मरते जाते।

फिलिपाइन द्वीपसमूहमें चेचकका टीका १८९८ में आया, अमेरिकन जन-स्वास्थ्यरक्षक-विभागके अधिकारियोंने वहाँ इसका कानूनसे प्रचार किया। १९१८-२० में टीका लगानेपर भी १६२५०३ लोगोंको चेचक हुई जिसमें ७४४५३ मृत्यु हुई, मृत्युका भाव लगभग ४४ प्रतिशत रहा। इन्हीं दो सालोंमें भारतमें भी चेचकका विशेष प्रकोप था; परंतु भारतकी अपेक्षा फिलिपाइनमें अधिक लोग मरे। १९१९ में जब कि दस लाखकी जन-संख्यामें टीका लगानेपर भी ४७३७ मृत्यु हुई। भारतमें अनुपात ५७० था। आस्ट्रेलियामें टीका अनिवार्य न होनेसे वहाँ चेचक भी नहीं है। १९२० से फिलिपाइनमें टीकेका प्रयोग असफल और घातक होनेसे, वहाँकी सरकारने कानून ढीला करके सभी बंदरगाहोंपर 'चेचकके रोगियोंको

क्वारण्टाइनमें एकान्तवास' करनेका कठोर नियम बना दिया है। अब वहाँ चेचक बहुत कम होता है।

भारतमें भी चेचकका टीका व्यर्थ सिद्ध हुआ है। मद्रासमें १९२२ में चेचकका टीका लगाने और बार-बार लगानेका कानून बनकर प्रचलित हुआ; परंतु वहाँ भी चेचक न रोका जा सका। बंगालमें भी यही हाल है, बार-बार लाखों व्यक्तियोंको यह टीका लगनेपर भी, १९४३-४४ में इसका हानिकर एवं घातक परिणाम हुआ है, यद्यपि १९४५ में चेचकसे हुई मृत्यु-संख्याको 'बंगाल अकाल आयोग' ने अस्वीकार कर सरकारकी झूठी रिपोर्ट दी थी। इस रोगका कारण जब कि गरीबी और गंदगी है, उसे न दूर करके, स्वस्थ मानवकी देहमें चेचकके मुर्दा मवाद चुपड़कर, टोंचकर यह रोग बीजारोपणसे पैदा किया जाता है !

टीका लगानेसे क्या नुकसान होता है, यह स्पष्ट बताते हुए जर्मनीके एक वेक्सिनेटरने किसीसे कह दिया था कि 'टीका लगानेसे उपदंश हो जाता है। तो इस कथनपर उसके ऊपर अदालतमें मुकद्दमा चला था। तब बर्लिनके डाक्टर क्रीवल सरकारी गवाह होकर अपना वक्तव्य देने अदालतमें बुलाये गये थे। आपने भी वही बात स्पष्ट कही और बताया कि टीकेके आविष्कारक जेनर साहबकी दुग्धशालामें दूध दुहनेवाली नोकरानी 'सारा नेल्मीस' के हाथोंमें उपदंश रोग था, जिससे गायोंके स्तनमें फैलकर संयोगवश जेनरकी दुर्बुद्धिसे टीका बनकर चमत्कारी दवाके रूपमें सर्वत्र विख्यात हुआ। टीका लगानेसे बच्चोंके टांसिल फूल जाते हैं, स्त्रियोंके स्तनकी दुग्धग्रन्थियाँ सूख जाती हैं जैसा कि उपदंशमें होता है।

Pox=Vulgar name for syphilis or any eruptive disease ( American Illustrated Medical Dictionary )

टीकेका प्रचलन करनेवाला एडवर्ड जेनर ( १७४९-१८२३ ) कीटाणुवादी लुई पास्त्योर ( १८२२-१९२७ ) से पहलेका है। मेडिकल साइंसके क्षेत्रमें इन्हें भगवान्की तरह पूजा जाता है; परंतु आजके सुधरे हुए वैज्ञानिक इन्हें 'दुनियाके सबसे बड़े भोंदू' मानते हैं। Jenner and Pasteur are often referred to and described as great scientists, when they were but two of the world's biggest humbugs.

अनेक देशोंमें एक सौ वर्षतक स्वास्थ्य-रक्षा एवं चेचक-निरोधके लिये यह घृणित वैज्ञानिक प्रथा प्रचलित रही; परंतु उसका कुपरिणाम देखकर स्वयं इंगलैंडने इसे अनिवार्य न करके, रद्द करके स्वेच्छिक घोषित कर दिया है, जिसकी मर्जी हो, विश्वास—श्रद्धा हो, वह लगावे या न लगावे। यद्यपि इंगलैंड सरकारका स्वास्थ्य-विभाग अब भी बच्चोंको जन्मसे ६ महीनेके भीतर टीका लगवा देनेका प्रचार करता है। किसी माता-पितापर इसे जबरदस्ती नहीं लादा जाता। यदि माता-पिताका दिल टीकेको हानिकर समझकर स्वीकार न करे तो उसे छूट मिलती है।

## वैज्ञानिकोंकी विनय-पत्रिका

उनकी कल्पना उन्होंने सिद्ध कर दी। अंगरेजी शासनके फंदेसे छूटकर भारतीय भाइयोंको, १८५७ के धार्मिक सांस्कृतिक भूमिकासे उत्पन्न विद्रोहसे अपने योजनानुसार नब्बे वर्ष बाद स्वतन्त्रता मिल तो गयी, परंतु भारतीयोंने मवादकी इस खिचड़ीको अब भी नहीं छोड़ा है ! पहले तो अंगरेज सरकारके अधीन रहकर भारतवासियोंने चाहे अज्ञान या पराधीनताकी लाचारीसे स्वयंपर तथा बाल-बच्चोंपर गायके मवादसे बना हुआ यह चेचकनिरोधी टीका चुपड़ा, रँगा, टोंचा, किंतु अब स्वाधीन होकर भी वही वैज्ञानिक गुलामी और अन्धविश्वास कायम है। जिस इंगलैंडने भारतपर दो सौ वर्षोंतक शासन किया, उसी देशके विख्यात अनुभवी एवं उदार विचारके डाक्टरोंकी एक समितिने भारतके प्रति प्रेम रखते हुए, भारतमें चेचकके टीकेसे होनेवाली हानियाँ दिखलाकर भारतमें अनिवार्य टीकेके विरोधमें[3] 'डॉक्टरोंकी विनय-पत्रिका' २४ बड़े-बड़े डॉक्टरोंके हस्ताक्षरोंसहित, भारतकी अनेक संस्थाओंके अध्यक्षों और सदस्योंके पास भेजी। उन्होंने '[4]आपके आज्ञाकारी सेवक' की हैसियतसे अपने हस्ताक्षर किये हैं। ये हैं डॉ० बट्राण्ड पी० एलिन्सन, एम० विडो बेली, रेजिनाल्ड बोडेन, मार्था क्लीलेंड, एच टूडर एडमण्ड्स, एण्ड्रयू गोल्ड, जे० एच० होस्ली, डोनाल्ड मोरिस, एच० डब्ल्यु० जोर्डन, एच, वेलण्टाइन नेग्स, जार्ज मेकल्पिन, आर० फीलिंडग ओल्ड बैरिष्टर एट-लॉ, सायरिल पिंक, डोरोथी शेपर्ड, जे० ए० साइक्स, ईथेल अनविन बाड़ी, एच. फर्गी उड्स, जी. टी० विल्किन्सन, एडवर्ड मूर, जे.

3. Doctors' Petition Against Compulsory Vaccination in India.

4. Your obedient Servants.

बी. स्वानबर्ग, गॉर्डन लाटो, डब्ल्यु० हारोल्ड एमली, और डब्ल्यु० एलिस मॉर्गन। ये सब एम.डी.; एम. आर. सी. एस; एल. आर. सी. पी; एम. बी. बी. एस.; बी. सी. एच; एम. सी. एच; एल. आर. सी. एस; एल. आर. एफ. पी. इत्यादि उपाधिधारी और डॉक्टरी विषयके ख्यात, अनुभवी अधिकारी हैं। इन सबने अपनी 'विनय-पत्रिका' के आरम्भमें ही लिखा है।

"हमलोगोंने इंगलैंडमें चेचकनिरोधी टीकेके [5]'स्वार्थ विहित उद्योग' से एक सौ वर्षतक इसकी असफलताके बुरे परिणामसे बहुत दुःख भोगकर, अन्तमें इसके कुचक्रसे बहुत संघर्ष करके मुक्ति पायी है और हमारी इच्छा है कि हमारे सहयोगी भारतीय भी इसके स्वार्थ-जालसे अवश्य मुक्ति पावें। 'अपने पड़ोसीसे आत्मवत् प्रेम करो' यही हमारा धार्मिक मन्त्र हमें ऐसा प्रयत्न करनेको प्रेरित करता है; क्योंकि सारी मानव-जाति हमारे पड़ोसी हैं। [6]भारतके प्रति इस विषयमें हमारी नैतिक जिम्मेदारी है; क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेंटने ही भारतमें चेचकका टीका प्रचलित किया था। चेचकके टीकेके प्रचारमें यह भूल हो गयी, इसका पूरा निश्चय हो जानेपर हम अपने देशमें इसे बहिष्कृत करके, चाहते हैं कि भारतके सौ वर्ष इंगलैंडकी भाँति व्यर्थ बरबाद न हों और भारतमें यह अनिवार्य टीका बहिष्कृत कर दिया जाय। इस प्रकार आपलोग भी केवल हमारे इंगलैंडके बराबर ही नहीं, वरं यूरोपके अन्य देशों तथा उत्तरी अमेरिकाके कुछ राज्यों, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंडकी श्रेणीमें (स्वतन्त्र-स्वास्थ्य-साधनों) में बराबर हो जायँगे।"

## प्रमाणित उद्धार

आगे उन्होंने [7]नीली किताब (पार्लियामेंट तथा प्रिवी कौंसिलकी रिपोर्ट) 'भारतमें स्वास्थ्यके उपाय' १९ वीं जिल्द, पृष्ठ १६८ से उद्धृत किया है 'दस सालके आँकड़ोंसे कोई प्रमाण नहीं मिलता कि रोग-प्रसारके समय टीका लगानेसे उसपर कोई प्रभाव पड़ा हो, इस नतीजेसे परिणाम निकलता है कि लोगोंमें चेचकका प्रकोप रोकनेके लिये सफाई-पर विशेष ध्यान देकर चेचकका सामना करना चाहिये।'

दार्शनिक और नेता, [8]जॉन मॉर्ले, जो १९०६ से १९१४ तक भारत-सरकारके राज-सचिव थे—ने अपना अभिमत दिया है—'जबरदस्ती टीका लगानेके विरुद्ध मैं हमेशा था और अब भी हूँ।'

## टीका, इंजेक्शन और कीटाणुवाद

२५ जनवरी १९१२ के 'लाइफ' (अमेरिका) में डॉ. डब्ल्यु. ए. ग्रोब्सने लिखा था, 'सौ वर्ष पहले चेचकका टीका आविष्कार होनेके पहले, तीन प्रतिशत लोग चेचकसे,

5. The greed of vested interests.

6. We in England, after suffering bitterly for more than a century from the failure and evil effects of Vaccination, have as a result of a hard struggle against prejudice, selfishness and the greed of vested interests, at last succeeded in freeing ourselves from the compulsory imposition of this practice, and we now desire that our fellow men in India shall also be free. In this we are following the religious precept 'Love thy neighbour as thyself', realising that all mankind are our neighbours. In this matter we feel we have a particular moral responsibility towards India, because it was the British Government in India who introduced Vaccination into that country. Convinced that its introduction was a mistake, as has been amply proved by results, we now wish to take this opportunity of the abolition of compulsion in England to invite to you, without wasting 100 years as England did, to abolish compulsory Vaccination in India. You will thus bring your country into line not only with England, but also with certain other European countries, with some of the States of North America, and with Australia and New Zealand.

7. Blue Book "Sanitary Measures in India", Vol. XIX. p 168: 'Ten years statistics' afford no evidence that Vaccination affects the usual epidemic course of the disease, and hence this fact, in face of extensive Vaccination work of the present and past years, appears to lead to the conclusion that, in its epidemic form, small-pox must be met by improving the sanitary condition of the people."

8. 'I am and always have been opposed to the principle of compulsion in the matter of Vaccination,' —John Morley, Secretary of State for India 1906—1914.

इंगलैंडमें मर जाया करते थे। अब टीकेकी कृपासे ऐसी मौतें नहीं होतीं। लोग चेचकके टीकेका कितना भी विरोध करें, उनके लिये मैं तैयार हूँ। बताइये, चेचकके टीकेसे कहाँ नुकसान हुआ, कितनी मौतें हुई ?'

इसके उत्तरमें 'महारानी विक्टोरियाके राज्यका इतिहास' देखिये, जो १९०० में अंगरेजीमें प्रकाशित हुआ था, जिसमें लिखा है—'सरकारी आँकड़ोंसे सिद्ध होता है कि वेक्सिनेटरोंके द्वारा विषाक्त औजारोंसे प्रतिवर्ष २६ हजार बच्चे मौतके घाट उतारे गये हैं और एक लाख बच्चे बीमार होते हैं।'

Official statistics prove that twenty-six thousand children have been annually slaughtered by the poisoned lancets of public Vaccinators, and one hundred thousand injured yearly by invaccinated discease."

१८७८ के पार्लियामेंटकी बैठकोंकी रिपोर्ट–संख्या ४८८ 'English Digest of Parliamentary Returns, No. 488, Session of 1878, Vaccination Mortality' में 'टीकेद्वारा मृत्यु' शीर्षकके नीचे लिखा है, प्रतिवर्ष २५ हजार बच्चोंको टीका लगाकर हत्या की जा रही है और इससे अधिक संख्यामें बच्चे रोगी और अपंग बनाये जा रहे हैं।'

'Twentyfive thousand children are annualy slaughtered by diseases inoculated into their systems by Vaccination, and a far greater number are injured and maimed for life by the same unwholesome rite."

अपने वैज्ञानिक ग्रन्थ 'वण्डरफुल सेंचरी' में प्रोफेसर ऑल्फरेड रसेल वालेस, एल. एल. डी. ने, जो अंगरेजी वैज्ञानिकोंके सभापति थे, लिखा है, 'टीका कोई भलाई करनेमें असमर्थ है, और निश्चय ही वह लोगोंमें रोग फैलाकर मौतके घाट बहुतोंको उतारता है और टीकेद्वारा पाँच प्रकारकी बीमारियाँ शरीरमें प्रविष्ट की जाती हैं, जिसके घातक परिणामसे प्रतिवर्ष सम्भवतः दस हजार लोग तो मरते ही हैं।'

'While utterly powerless for good, Vaccination is the certain cause of disease and death in many cases, and is the probable cause of ten thousand deaths annually by five inoculable diseases of the most terrible and disgusting character.'

टीका केवल व्यर्थ ही नहीं, खतरनाक भी है, इससे शरीरमें रोगके कीटाणु प्रविष्ट होकर पनपते हैं और घातक रोग उत्पन्न कर फैलाते–हत्या करते हैं। पशुका मवाद, मुर्दा और जिंदा, रोगके कीटाणुओंका विषाक्त मिश्रण होता है जो रक्तको विषाक्त करता है।

कीटाणुवाद भयंकर वितण्डावाद है, कीटाणुओंसे रोग होते हैं। कीटाणु हवा, पानी, भोजन और शरीर, चर्म एवं ओष्ठपर लाखों, करोड़ोंकी तादादमें हर समय मौजूद होते हैं, इनसे बचे, किसीसे सम्पर्क न करो, श्वास लेना, कुछ भी खाना-पीना घातक है, अतः कीटाणुओंको नष्ट करनेमें ही हमारा जीवन कायम रह सकता है। अतः संसारके कीटाणुओं-को नष्ट करनेके लिये संसारमें आग लगा दी जाय। कौन वैज्ञानिक किस साधनसे संसारसे कीटाणुओंको नष्ट एवं निर्वंश कर सकता है ?

अमेरिकी सीनेटके सदस्य डॉक्टर गेलिंगरने अपने एक भाषणमें कहा था, 'If we believed one half of it, we would not dare to breathe, eat or drink, but would want to get into glass cases, but would be hermetically sealed up.'

'यदि हम इन वैज्ञानिकोंकी आधी बात भी मान लें तो हमें श्वास लेना, खाना-पीना भी कठिन हो जायगा। कीटाणुओंके डरसे हमें काँचके बने बक्सोंमें घुसकर बिलकुल बंद हो जाना होगा।'

राबर्ट कॉचने कीटाणुसे रोग होनेका सिद्धान्त जब प्रकाशित किया तो उनके अन्धानुयायियोंने अनेक प्रकारके कीटाणु खोज निकाले और उसपरसे अब रोगनाशक, रोगनिरोधक अनेक प्रकारके रोगोंके कीटाणुओंको मारनेके लिये, अनेक प्रकारके विष-रसायन और पशुओंके इस रक्त-मवादसे इंजेक्शन बनकर प्रचलित हो चले। नतीजा वही हुआ, रोगके कीटाणुओंसे अनेक नये रोगोंकी खेती, रोगियोंकी बढ़ती और अस्पतालों, दवाओं, विषों तथा डॉक्टरोंकी बढ़ती—उन्नति ! अपंगोंकी बढ़ती ! जैसा बीज वैसी फसल !

क्या कीटाणुओंकी कृपापर ही मानवका जीवन निर्भर है ? क्या कीटाणु इतने घातक हैं ? क्या कीटाणुओंसे सचमुच रोग

होते हैं ? इसकी जाँचके लिये बैज्ञानिक प्रोफेसर पेटनकॉफर और प्रोफेसर इसमार्क ( Prof. Pettonkoffer and Prof. Esmarch ) प्रयोगार्थ, हैजा रोगके विकसित ( Cultured ) हजारों कीटाणु पी गये, जिन कीटाणुओंको स्वयं डॉ० राबर्ट कॉचने ऐसे प्रयोगके लिये विकसित तैयार किया था।' टायफाइड कीटाणुओंके विषयमें, विख्यात एवं प्रामाणिक डॉ० मेचनिकॉफ ( Metschnikoff ) ने अपना मत दिया है 'कि अनेक स्थनोंमें तथा अस्पतालोंमें भी टायफाइड कीटाणु बड़ी तादादमें पाये गये हैं, परंतु वहाँके रहनेवालों-को इन कीटाणुओंसे कभी टायफाइड नहीं हुआ ?

एक विशेष प्रकारके कीटाणु, klebs Loeffler bacilli. जिससे डिफ्थीरिया रोग होता है, बहुत-से लोगोंके कण्ठमें मौजूद पाये गये हैं, परंतु उन्हें डिफ्थीरिया कभी नहीं हुआ और इन विकसित कीटाणुओंको खा लेनेपर भी किसीको वह रोग नहीं हुआ, यह सब प्रयोग करके देख—जान लिया गया है।

'Medical Brief' नामक डाक्टरी अखबारमें लिखे अनुसार प्रोफेसर मेचनिकॉफने प्रयोग करके देख लिया और हैजेके कीटाणुओंको उन स्थानोंके जलाशयोंमें घोला, तथा लोगोंने उस पानीको पिया, परंतु वहाँके लोगोंको न पहले कभी हैजा हुआ, न पानी पीनेसे कुछ असर हुआ। रोगके कीटाणु सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी हैजा, चेचक, प्लेग आदिके फैलावके समय सभी लोगोंको न तो ये रोग होते और न सब लोग इन रोगोंसे मर ही जाते।

अतएव कीटाणुओंसे रोग और मृत्यु होती है या अपनी गलत चर्या, गलत आहार-विहारसे उत्पन्न अपनी ही विषमयता-से ? मनुष्य कीटाणुओंकी कृपासे जीवित, रोगसे बचा रहता है या अपने उचित आहार-विहार एवं संयमसे उपार्जित सबल प्राण, सबल रक्त एवं सबल स्वास्थ्यसे ? स्वयं विचार एवं अनुभव करनेकी बात है कि संसारके मानव, पशु, पक्षी भी कैसे जीते हैं ?

कीटाणुवादका व्यर्थ वितण्डावाद डाक्टरोंके अनुभवसे स्वयं हो जाता है। 'टाइम' २ नवम्बर १९५९ में प्रकाशित पृष्ठ ७७ पर इस समाचारको देखिये, 'किस कीटाणु या विषाणु-से कौन-से रोग होते हैं, इसका निश्चय वैज्ञानिकोंद्वारा नहीं हो पाता, क्योंकि कतिपय कीटाणु और विषाणुसे समान लक्षणवाले रोग होते पाये गये हैं, चाहे जुकाम हो, गलेकी सूजन या पीड़ा हो, चाहे बुखार या पोलियो हो, इनका निश्चय करनेके लिये किसी विशेष कीटाणुका नाम नहीं लिया जा सकता। इसका निश्चय करनेके लिये डाक्टरोंकी एक ऐसी फौजकी आवश्यकता पड़ेगी, जो प्रयोगशालामें दिन-रात कीटाणुओंको शोध-पहचान किया करें।'

'To the ailing human and his physician a major difficulty is that viruses cannot be identified by the disease they cause—many different ones may produse seemingly identical symptoms. And a single virus may touch off, in different people, symptoms ranging from a cold, a sore throat, a fever to a paralytic polio. Even paralytic polio cannot be diagnosed as surely as was believed in what Dr. Schuman called the happy unenlightened first quarter of this century, because several viruses simulate its signs. Even such time-honoured children's infection as measles, German measles and mumps may deceive the physician. So said Dr. Schuman, diagnois often cannot be positive without a battery of laboratory tests.'

[1]श्रीअल्फ्रेड रसेल वालेस एल० एल० डी०; एफ० आर० एस० ने अपनी पुस्तक 'गजबकी शताब्दी' 'Wonderful century' में लिखा है, टीका लगानेके सम्बन्धमें जो कानून जिस आधारपर बने वे बिल्कुल गलत थे, जिनके वादे कभी पूरे न हुए। टीका लगानेकी प्रथा स्वास्थ्य-विज्ञानके बिल्कुल

1. "Wonderful century"—Alfred Russel Wallace LL. D., F. R. S.—'The Successive Vaccination Acts were passed by means of allegations which were wholly untrue, and promises which have all been unfulfilled,...... utterly opposed to the whole teaching of Sanitary Science, is one of those terrible blunders which in their far-reaching evil consequences are worse than the greatest crimes. The abolition of all laws enforcing or encouraging Vaccination is of more immediate and vital importance than any party dogma or any political programme.'

विरुद्ध है, बड़े अंधेरकी भूल है, जिसका परिणाम किसी महा-पराधसे भी बुरा है, इसका कानून फौरन रद्द होना चाहिये ।

'श्रीचार्ल्स क्रीटन, एम० डी० ने रायल कमीशनको बताया कि 'चेचकके टीके'के विषयमें 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के लिये मुझसे लेख माँगा गया तो मैंने इस वैज्ञानिक प्रथाको 'भद्दा, विकृत, अन्धविश्वास' लिखा । जब इनकी मृत्यु १८ जुलाई १९२७ को हुई तो उनकी मृत्यु-सूचनामें सर्व-मान्य एवं प्रसिद्ध डॉक्टरी अखबार 'लान्सेट' के ३० जुलाईके अंकमें प्रोफेसर बल्लोचने उनको 'सबसे अधिक विद्वान्' बताया था और उनकी 'हिस्ट्री ऑफ ईपिडेमिक्स इन ब्रिटेन' पुस्तकके विषयमें 'उन्नीसवीं सदीमें डॉक्टरीविषयक एक अंग्रेजद्वारा लिखी गयी सबसे बड़ी पुस्तक' लिखा था ।

इटलीमें पेरुजिया विश्वविद्यालयमें 'मेटेरिया मेडिका' के प्रोफेसर कार्लो रूआटा, एम० डी० ने लिखा है 'वेक्सिनेशन चेचकका टीका लगाना सबसे भयानक एवं घातक भूल है जिसमें डाक्टर लोग धँस गये हैं ।' और ब्रिटिश मेडिकल जर्नलके २७ मई १८९९ के अंकमें तो इटलीकी फौजोंमें बारीकीसे टीका लगानेपर भी चेचक फैलकर जो लोग मरे थे, उनके सब विस्तृत आँकड़े प्रकाशित हुए थे । ये सब प्रो० रूआटाके पत्रमें थे ।

वेक्सिनेशन और इंजेक्शनपर विश्वास और धंधा करने-वाले बड़े डाक्टरोंने भी अपने अनुभवके उद्गार निकाले हैं । डॉ० जॉन वाल्टर कार, एम० डी०, सी० बी० ई० ने लन्दन मेडिकल सोसायटीमें अध्यक्षपदसे कहा था—'टीका लगाने-के विषयमें हमारा विचार बदलता जा रहा है और आगे शीघ्रतासे बदल जायगा, यदि कानूनद्वारा इसे अनिवार्य न बनाया होता । परंतु यह तो व्यवसायमें ऐसा पैठ गया है जैसे लोग भूत-प्रेतोंको मानते हैं और ऐसे अन्धविश्वासको मिटाना कठिन जान पड़ता है ।'

रायल सोसायटी ऑफ मेडिसिनके अध्यक्षपदसे प्रोफेसर मकिन्टोशने कहा था—'विज्ञानकी दृष्टिसे भी, हरेक प्रकार-से अब यह बात विवादास्पद नहीं रह गयी है कि शरीरमें विषसंचार करनेसे वह बढ़कर व्यक्तिको हानि पहुँचा सकता है । उसका प्रभाव रोका नहीं जा सकता और उसका परिणाम न जाने क्या हो । कौन जानता है कि कमजोर कीटाणु शरीरमें प्रविष्ट करनेपर कबतक चुपचाप छिपा रहेगा और कब पहलेकी तरह घातक हो जायगा ।

'Scientifically, it cannot be disputed that from every point of view the injection of virus capable of multiplying in the body of the individual is bad. Thus the effect cannot be controlled...........this may lead to unforeseen results.......who knows for how long an attenuated bacillus can lie dorment and then assume its former Virulence.' Prof: Mc. Intosh, Presidential address to the Royal Society of Medicine. 19. 10. 1926.

किसी प्रकारके टीकेके अन्धविश्वासमें पड़कर उसे कानूनी जबर्दस्तीसे जनतामें प्रचारित करना बड़ा अन्याय है । १५० वर्षोंतक संसारमें इसका प्रचार होकर तथा ९० वर्षोंतक कानूनन जबर्दस्ती लोगोंको टीका लगाकर इसका घातक परिणाम देखकर अनेक देशोंके लोग जाग्रत् हो गये और इस अन्धविज्ञानी प्रथाको बहिष्कृत एवं स्वैच्छिक कर दिया । इस टीकेको लिम्फ (lymph) नाम देकर जनतामें भ्रम फैलाया जाता है; क्योंकि 'लिम्फ' दो अर्थोंवाला शब्द है । साधारण ऑक्सफोर्ड डिक्श-नरीमें इसका अर्थ दिया गया है—'पवित्र जल; शरीरके अङ्गों-से निकलनेवाला बेरंग रस, गायकी मवाद भरी मसूरिकाका पदार्थ जो टीका लगानेके काम आता है ।'

जो सरकार अपनी जनतामें कानूनकी जबर्दस्तीसे, रोग-निरोध एवं स्वास्थ्य-रक्षाके नामसे ऐसी अन्धवैज्ञानिक, स्वार्थी, घातक प्रथाका प्रचार करती है जिससे कि लोगोंमें रोग विकृत होता है, बढ़कर मृत्यु होती है, उन सब वैज्ञानिक हत्याओं तथा पशु-हत्याओंके लिये सरकार अपराधी है ।

The Ministry of Health cannot escape from direct responsibility for every death or injury arising from the use of such foul lymph; and in addition to the serious dangers to human beings a vast amount of cruelty caused to the animals used in the production of lymph.

(क्रमशः)

1. Charles Creighton, M. D.—the article on Vaccination for the Encyclopaedia Britannica—ultimately described as 'a grotesque superstition.'

# आगामी अष्टग्रही योग

## भगवान्‌की लीला और मङ्गलविधान

संसार अनित्य, अपूर्ण और क्षणभंगुर है। 'सृष्टि और प्रलय' इसका स्वरूप है, 'जन्म-मृत्यु' इसका स्वभाव है। यह न तो सदा एकरस रहता है, न एकरूप। इसमें बनने-बिगड़नेकी लीला चलती ही रहती है। सुखान्त-दुःखान्त नाटक ही इसका आकार है। इस सारी लीलामें वर्तमान आद्यन्तवन्तहीन नित्य सत्य एकरस वस्तु है—लीलामय भगवान्, वही स्वयं लीला बना हुआ नित्य लीला करता रहता है। उसकी लीलाके देखनेवाले जन्म-मृत्यु, सृजन-संहार दोनोंमें ही उसके लीला-चमत्कारको देखकर, दोनोंमें ही उसकी अभिनय-चातुरीको देख-देखकर पद-पदपर उसे पहचानकर प्रसन्न होते रहते हैं, या स्वयं ही अभिनेताके रूपमें उसके इंगित या विधानके अनुसार जन्म और मरणका अभिनय करते हुए सदा निर्लेप तथा परम प्रसन्न रहते हैं। पर जो इस बातको नहीं समझते—जो अभिनयके लिये मिले हुए नाम-रूपमें, शरीरमें और नाममें 'मैं' पनका आरोप किये रहते हैं, वे मेरे-तेरे, राग-द्वेष, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, सृजन-संहारको सत्य मानकर इस द्वन्द्वके चक्रमें पड़े (विनाशके) भय और (विनाशके पश्चात्) शोकमें डूबे रहते हैं। अनादिकालसे अबतक अनन्त बार इस प्रपञ्चका सृजन हो चुका, अनन्त बार इसका संहार हो चुका। प्रलय, खण्डप्रलय, महाप्रलय और पुनः सृजन—भगवान्‌की प्रकृतिके राज्यमें सदा होते ही रहते हैं—होते ही रहेंगे। यहाँ 'क्रम विकास' नहीं, परंतु चक्रवत् चढ़ाव-उतारकी, सृजन-संहारकी लीला चलती ही रहेगी। इस लीलाका लीलाभावसे ही अनुभव करना चाहिये। एक कुशल अभिनेताकी भाँति जगन्नाटकके नाट्यमञ्चपर सब कुछ करते-देखते हुए ही सदा आसक्तिरहित, अखण्ड भगवद्भावमय रहना चाहिये। इसीमें मानवकी मानवताका विकास है और इसीसे आत्यन्तिक अखण्ड परा शान्ति और परम सुखकी प्राप्ति होती है।

अष्टग्रही जैसे योग संसारमें बहुत बार आये, आते रहेंगे। ये ग्रहनक्षत्र भी लीलामय भगवान्‌के मङ्गल विधानानुसार लीलामयकी लीलामें अपनेको पात्र बनाकर यथायोग्य अभिनय किया करते हैं, करते ही रहेंगे; तथा कर्म, ग्रहके नियमानुसार कार्य तथा परिणाम भी होते ही रहेंगे। संसारमें फलकी ओर न देखकर अनासक्त भावसे यथायोग्य कर्म करते रहना तथा स्वकर्मके द्वारा भगवान्‌की पूजामें रत रहना ही परम कर्तव्य है। भगवान्‌ने कहा है—

**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।**

(गीता ३।९)

**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**

(गीता १८।४६)

'कुन्तीनन्दन! उन भगवान्‌की सेवाके लिये आसक्ति-रहित होकर भलीभाँति कर्म करते रहो।' 'अपने-अपने कर्मके द्वारा उस भगवान्‌की पूजा करके मनुष्य सिद्धिको—जीवनकी सफलताको प्राप्त करता है।'

अतएव यथार्थ कल्याणकारी भाव तथा सिद्धान्त तो यही है कि यथायोग्य भगवत्सेवाके भावसे मनुष्य अपना कर्म करता रहे एवं सदा हर-समय हर-अवस्थामें परम प्रसन्न रहे। यहाँके विनाशसे आत्माका विनाश नहीं होता और न यहाँके सुख-सौभाग्य या लाभसे ही आत्माको कोई लाभ होता है।

दूसरी दृष्टिसे संसारमें जीवोंके कर्मवश ये प्रलय-महाप्रलयके काण्ड हुआ करते हैं। यद्यपि ये होते हैं नियमानुसार ही तथा पूर्वरचित ही। महाभारतके महासमरमें भयानक संहार हुआ, पर वह भगवान्‌ने पहलेसे ही रच रक्खा था। यह उन्होंने अपने विराटरूपमें अर्जुनको दिखा दिया, अर्जुनने देखा और कहा—

**वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।**
**केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥**

(गीता ११।२७)

(भीष्मादि सभी वीर) आपकी विकराल दाढ़ोंवाले भयानक मुखोंमें बड़े वेगसे प्रवेश कर रहे हैं। उनमें कुछके मस्तकादि उत्तमाङ्ग आपके दाँतोंमें चूर्ण-विचूर्ण हुए लग रहे हैं।

और भगवान्‌ने भी स्वयं कहा—

**मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।**

(गीता ११।३३)

'ये सब पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, तुम तो हे सव्यसाची! केवल निमित्त बनो।' तथापि एक साथ एक जगह संहार होनेपर मनुष्य उसे आकस्मिक विपत्ति मान लेता है और डर जाता है। ग्रहयोग तो उस समय नियमानुसार

आते ही हैं। ऐसा ही डर इस समय 'अष्टग्रही योग' को लेकर छा गया है। इसका परम मङ्गलमय फल एक तो पहले ही होने लगा है कि देश भरमें सभी ओर मनुष्य देवाराधना और ईश्वराराधनामें लग रहे हैं, या लगना चाहते हैं। यह योग परिणाममें व्यापक दृष्टिसे भी अशुभ नहीं होगा; क्योंकि यदि संहार हुआ और उसमें बढ़ती हुई हमारी आजकी पापवृत्ति नष्ट हो गयी तो हमारा—जीवमात्रका परम मङ्गल ही होगा। आत्माका तो कभी विनाश होता नहीं तथा प्रकृति परिवर्तनशील है ही। इसलिये उस दृष्टिसे भी डरनेकी आवश्यकता और औचित्य तो नहीं है, पर इस अष्टग्रहीको लेकर चारों ओर एक भयका विस्तार हो रहा है और हमारे पण्डित-ज्योतिर्विद् विद्वान् भी इसपर विचार करने तथा उन्हें व्यक्त करनेमें लगे हैं। ज्योतिषसम्बन्धी पत्रोंमें तो इस विषयपर विशद विचार प्रकट किये ही जा रहे हैं। 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ भी बहुत लम्बे-लम्बे बड़ी संख्याके लेख आये हैं, आ रहे हैं और जरा-सा संकेत पाते ही इतने आ सकते हैं, जिनके लिये एक विशेषांक ही निकालना आवश्यक हो। पर ऐसा करनेका न अवकाश है, न रुचि है, न आवश्यकता ही। हाँ, किसी भी बहाने शास्त्रोंमें श्रद्धा, देवाराधन और भगवदाराधन बढ़े, लोग भजन-कीर्तनमें लगें, यह इष्ट है—इसीलिये इस विषयपर कुछ विचार पहले भी प्रकट किये गये थे और अब भी किये जा रहे हैं।

## कुछ विद्वानोंके मतोंका सार

हमारे पास बहुतसे लेख आये हैं, उनमेंसे कुछ लेखोंका अत्यन्त संक्षिप्त सार ( केवल फलनिर्देशक प्रसंगका सारमात्र ) ही यहाँ प्रकाशित किया जाता है, लेखक महानुभाव हमारी स्थिति समझकर कृपया क्षमा करें।

### श्रीमिश्रीलाल सक्सेना

यह गोलयोग सूर्यके मकर प्रवेशपर, १३ जनवरी सन् १९६२ से प्रारम्भ होता है। इससे सम्भव है कि १६ जनवरी तक कोई ऐसा अन्ताराष्ट्रीय तनाव उत्पन्न कर दे जिससे विश्वमें भय और आतङ्क छा जाय। २३ जनवरीसे यह तनाव और भी विकट होगा। ३ फरवरी १९६२ संध्या ५.४३ मिनट ( भारतीय समयानुसार ) पर यह गोलयोग पूर्णरूपसे सक्रिय होता है। इसका प्रभाव ३ मार्च १९६२ तक रहेगा। वैसे १५ मई सन् १९६३ तक खराबी होती रहेगी।

४ फरवरी १९६२ का चन्द्रग्रहण अफ़गानिस्तान तथा मध्यपूर्व एशियामें जहाँ-जहाँ दिखायी देगा, वहाँ आर्थिक व्यवस्थामें हलचल मचा देगा। चारों ओर भूकम्प, प्राकृतिक कोप, दुर्घटनाएँ और परस्पर कलह पैदा करेगा।

इस कालमें युद्धकी भी सम्भावना है। यह अष्टग्रहोंका योग विश्वके तीन राष्ट्रोंके लिये तो बड़ा ही अमङ्गलसूचक है। हो सकता है कि उनका अस्तित्व, सिद्धान्त और नीतियाँ कहीं सदाके लिये ही धूलधूसरित न हो जायँ। इस योगसे यूरोपमें विशेष प्रकारका एक रोग उत्पन्न हो सकता है, जिसमें मनुष्य-शरीरके अङ्ग स्वतः गल-गलकर गिरने लगेंगे।

पाकिस्तानकी मौजूदा सरकारमें आमूल परिवर्तन तथा परस्पर असंतोष होगा। पाकिस्तान और अफ़गानिस्तानमें पूर्णतया सम्बन्धविच्छेद भी सम्भव है।

इंगलैंड, डेन्मार्क, पोलेण्ड, जर्मनी, सीरिया और जापानमें युद्धकी तैयारीके कारण साधारण जीवनमें अस्तव्यस्तता, चीन, हालैंड, कनाडा, उत्तरी पश्चिमी अफ्रिका, न्यूजीलैंड, स्काटलैंडमें आर्थिक संकट। चीन, तिब्बत, बर्मा, इण्डोचीन आदिमें वर्तमान सरकारोंके अस्तित्वमें खतरा तथा अकाल, भूकम्प आदि प्राकृतिक प्रकोप और मिश्रमें महामारी आदि होंगे। अमेरिकाकी राशिसे योग ८वें घरमें और रूसकी राशिसे १२वें घरमें पड़ता है और दोनों घरोंमें दृष्टि-सम्बन्ध है तथा इस योगकी दृष्टि वृष राशिपर पड़ती है, अतएव सम्भव है कि बर्लिन, फ्रांस, पोलेंड, आस्ट्रिया और ईरान—इन्हींमेंसे कोई युद्धकी आशंकाका कारण बन जाय। इस गोलयोगसे विश्व-युद्धकी सम्भावना है, जिसके परिणामस्वरूप रूस और अमेरिका दोनोंकी ही स्थिति डावाँडोल हो सकती है।

भारत, टर्की, स्विट्जरलैंड, वेस्ट इन्डीज, ग्रीस, ब्राजिल, स्पेन, हंगरी, अरब राष्ट्र और आस्ट्रेलिया—ये इस योगसे बहुत कम ग्रस्त होंगे। इनका तटस्थ रूप भी बना रहेगा।

भारतमें उत्तरी सीमापर शत्रुराष्ट्रकी हानिकर गति-विधियाँ बढ़ जानेसे सेनापर भारी व्यय होगा। विदेशमें भारतीय दूतोंमें परिवर्तन होगा, सरकार तथा जनतामें विरोध उत्पन्न होगा। सरकारके प्रति असंतोष बढ़ेगा, विदेशोंसे ऋणोंकी न्यून प्राप्तिके कारण स्थिति अव्यवस्थित होगी। बाँध, सिंचाईके साधन, बिजली आदि उद्योगोंमें हानि होगी। व्यापारपर बुरा प्रभाव पड़ेगा। देशकी आयात-निर्यात व्यवस्था असंतुलित होनेके कारण कई फर्म एवं सरकारी निधिसे चलनेवाली कम्पनियोंके अस्तित्वमें खतरा पैदा हो जायगा। बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिमी राजस्थान, कलकत्ता नगर, इलाहाबाद, हैदरा-

बाद, दक्षिण आदिको पीत लहरोंका सामना करना पड़ेगा। पंजाबमें विशेष उपद्रवकी सम्भावना है।

गोलयोगका दुष्प्रभाव माननीय राष्ट्रपतिजी तथा प्रधान मन्त्रीजीके स्वास्थ्यपर भी पड़ना सम्भव है। अतः उनके स्वास्थ्य तथा मङ्गलके लिये महामृत्युञ्जय यज्ञका आयोजन होना चाहिये।

## प्रो० जी० आर० महाडिक

अप्रैल १९६१ से अनिष्ट प्रभाव आरम्भ हो चुका है। ६ दिसम्बरको वृश्चिक राशिपर पाँच ग्रहोंका योग होगा। इससे चमत्कारपूर्ण घटनाएँ होंगी। जैसे जर्मनीका एकीकरण, मध्य यूरोप और एशियाका वातावरण तनावपूर्ण, अमेरिकामें डेमोक्रेट और रिपब्लिकन दोनों दलोंमें मतभेद, अमेरिकाके एक प्रमुख राजनीतिज्ञके लिये अनिष्टकारी परिणाम आदि। भारतमें राजनीतिक वातावरण दूषित, दैवी प्रकोप, किसी एक प्रधान व्यक्तिके लिये अशुभ, जनवरीमें संसारके वातावरणमें विशेष खराबी होना सम्भव है। अष्टग्रही योगके समय ३ फरवरीसे ५ फरवरीतक युद्ध-जैसी भयानक स्थिति। भारतके समीपवर्ती राष्ट्रोंमें विशेष उथल-पुथल, मध्य एशियाके राष्ट्रोंके लिये विशेष अनिष्टकारी, जन-धनकी काफी हानि और भारतमें आमचुनावका स्थगित होना आदि सम्भव है।

१९६२ के अष्टग्रही योगके बाद १९६३ में एक क्षय मास तथा १९६३। ६४ में अधिक मासका होना भी प्रलयकारी योग बना रहा है।

## श्रीमदनलाल पोद्दार

इस अष्टग्रही योगका मोटा फल भूकम्प, भयंकर अग्निकाण्ड, अत्यन्त शीत और पाला पड़ना, अतिवृष्टि, उपलवृष्टि, सवारी-दुर्घटना, महामारी, दुर्भिक्ष, राजपरिवर्तन, अन्नका अभाव, सभी चीजोंमें तेजी, समुद्रमें तूफान आदि होंगे।

आधुनिक मतवाले अमेरिकाकी प्रभावराशि मिथुन और रूसकी प्रभावराशि कुम्भ मानते हैं। यदि यह बात सही है तो अमेरिकाकी प्रभावराशिसे अष्टम स्थानमें और रूसकी प्रभावराशिसे द्वादश स्थानमें ग्रहोंका अशुभ योग बन रहा है। अतः इन दोनों राष्ट्रोंके कर्णधारोंको किसी-न-किसी प्रकारकी विपत्तिका सामना करना पड़ेगा। कुछ समय आगे-पीछे विश्वयुद्ध भी सम्भव है।

( ६-७-८ ) ग्रहोंके योगके समय प्रायः सभी ग्रह अस्त रहेंगे, इस कारण बहुत जगह मन्त्रिमण्डलोंमें हेरफेर अवश्य होगा। कुछ पहलेसे और ६२ के अन्ततक उच्च शासकोंमें ५-४ का निधन भी सम्भव है।

## श्रीचन्द्रिकाप्रसाद मिश्र 'चन्द्रेश'

सृष्टिचक्रके आदि बिन्दुपर यदि यह योग होता तो महाप्रलयका योग होता। पर यहाँ ऐसा नहीं है। केवल ग्रहोंका योग हो रहा है। अतः भौतिक पदार्थोंकी क्षति निश्चित है। यह योग मकर राशिपर हो रहा है, अतः इसका दुष्प्रभाव मकरराशिसे सम्बन्ध रखनेवाले देशोंपर ही विशेषतया होगा। भारतके पश्चिमोत्तरीय, पूर्वोत्तरीय भाग, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, तिब्बत, चीन, नेपाल, मलाया, रूस, फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशोंपर विशेष प्रकोप सम्भव है। इस वर्षमें दो ग्रहण हैं। एक गत श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण था, दूसरा आगामी माघ अमावस्याका सूर्यग्रहण। ये दोनों ग्रहण भारतवर्षमें अदृश्य हैं। ये जहाँ दिखायी देंगे, वहाँ अष्टग्रही योगका पूर्ण अनिष्ट फल होगा।

## श्रीचन्दनदत्त शास्त्री

ज्योतिष विद्याकी आकाशी कौंसिलमें ४ फरवरी सन् ६२ को रविवार है। माघ कृष्ण अमावास्या क्षय तिथि है। मकर राशिपर छः ग्रह २३, २४, २५ डिग्रीपर चल रहे हैं। मंगल ९ डिग्रीपर तथा शनि १०॥ डिग्रीपर हैं। वे दोनों अस्त हैं। इनके प्रभावसे दक्षिण-पश्चिम दिशाके भूखण्डगर्भसे अङ्गार-सदृश एक भयंकर विस्फोट होनेका अनुमान है। यह विस्फोट ९ से २२ भूरेखापर, मध्यसागरसे दक्षिण-पश्चिम दिशामें मकर और कर्क राशिपर अपना विशेष प्रभाव करेगा। शेष राशियोंपर सामान्य प्रभाव होगा।

मकर राशिकी पश्चिम दिशा मानी हुई है। अतः पश्चिमी पाकिस्तानपर आठ ग्रहोंका प्रभाव होना अनुमानित होता है।

## श्रीरमेन्द्रप्रसाद विद्यार्थी

१९६२ की यह भविष्यवाणी सत्य होगी या नहीं, यह तो ईश्वराधीन है परंतु ज्योतिष शास्त्रकी दृष्टिसे इस अष्टग्रहीसे देशोंमें पीड़ा, रोग, उपद्रव, राज्यनाश, व्याधिविस्तार, अग्निकाण्ड, दुर्भिक्ष, बाढ़, तूफान, महामारी, अराजकता, सुखशान्तिनाश, अग्निभय, विप्लव, युद्ध, कलह आदिका होना अवश्यम्भावी है। यह ग्रहोंका असर सितम्बर १९६१ से शुरू होकर पूरे १९६२ तक रहेगा। भारतवर्षमें दक्षिण प्रान्त,

बिहार, आसाम, बंगाल, पंजाब तथा सबसे अधिक उड़ीसा राज्यपर असर होगा। दो बहुत बड़े राज्याधिकारियोंके लिये भी चिन्ताका अवसर है, उन्हें स्वयं या उनके लिये दूसरे इष्ट-मित्रोंको महामृत्युञ्जयका जप श्रद्धापूर्वक करना-कराना चाहिये।

भारतके अतिरिक्त यूनान, हालैंड, स्कॉटलैंड, उत्तरी अफ्रिका, न्यूजीलैंड, कनाडा आदिमें साधारण उपद्रव होंगे। रूस, चीन, तिब्बत, जापान, अमेरिका, नैपाल, स्याम, कम्बोज, काश्मीर, अफगानिस्तान, इराक, ईरान, तथा पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तानमें भीषण उपद्रव होंगे। जापानमें भी भारी परिवर्तनकी आशङ्का है।

## श्रीमदनमोहन ठक्कुर

यद्यपि भारतीय ज्योतिषियोंके अष्टग्रही योगके सम्बन्धमें विभिन्न मत हैं, परंतु जहाँतक मेरा अध्ययन है, विनाशकी रूपरेखा तैयार हो रही है और वह भी तीव्रताके साथ; क्योंकि मानवका पिछले तीस सालोंसे बहुत तेजीसे पतन हुआ है।××

इस तीसरे महायुद्धकी जो रूपरेखा तैयार हो रही है, उसमें एक विशेषता भी है कि वही इसके शिकार हो रहे हैं जिनके नाम कम्यूनिज्म, कैनेडी या ख्रुश्चेवके प्रथम अक्षर 'क'से हैं, जैसे काश्मीर, कोरिया, कांगो, काटङ्गा, क्यूबा, कुवैत आदि या फिर अमेरिकाके प्रथम अक्षर 'अ' से जैसे अगोला, अल्जीरिया, अरब राष्ट्र, द० अमरीका आदि। इस तर्कसे यह सिद्ध होता है कि आनेवाले विश्वयुद्धमें 'क' और 'अ' से आरम्भ होनेवाले देशोंमें ही विनाश अधिक होगा। जड या चेतन—यदि उसका नाम 'क' और 'अ' से है तो अवश्य ही वहाँ संहारक परिवर्तन होंगे।

यह संक्षिप्त सार है। सबका अभिप्राय प्रायः एक ही है इस अष्टग्रहीका अनिष्टकारक फल होगा। कहाँ अधिक होगा, कहाँ कम, कहाँ-कहाँ होगा, इस सम्बन्धमें विचार-भेद हैं जो स्वाभाविक हैं। सभी विद्वान् अपनी-अपनी अध्ययनशीलता, निर्णय-पद्धतिके अनुसार ठीक ही लिखते हैं। पर यह निश्चितरूपसे कोई नहीं कह सकता कि प्रत्येकका विचार अक्षरशः ज्यों-का-त्यों ही फलित होगा। उसमें न्यूनाधिकता भी हो सकती है और ऐसा भी सम्भव है कि जो कुछ लिखा गया है, उससे विलक्षण ही कुछ हो जाय, और कुछ बिल्कुल ही न हो। सब कुछ भगवान्के मङ्गलमय विधानके अनुसार ही होगा।

अष्टग्रही योगका दुष्प्रभाव समझें या और कुछ—विश्वमें अनिष्ट तो हो ही रहा है। चारों ओर अविश्वास और कलहके बादल मँडरा रहे हैं। भारतमें भी सब ओर प्रेमका ह्रास और कलहका विस्तार हो रहा है। अतिवर्षा और बाढ़से हाहाकार मचा है। पूना आदिमें बड़ी हानि हुई ही थी, इधर बिहारमें जो हानि हुई है, वह तो वर्णनातीत है। कहते हैं सन् १९३४ के भूकम्पसे सौगुना अधिक धन-जन-अन्नका नाश हुआ है। इधर उत्तर प्रदेशमें भी बहुत हानि हुई है*। रेल, नाव तथा हवाई जहाजोंकी भयङ्कर दुर्घटनाएँ भी बढ़ती जा रही हैं। इसी प्रकार उस अष्टग्रही योगके समय भी ऐसी ही या इससे अधिक हानि हो तो क्या आश्चर्य है। इससे बचनेका यथासाध्य उपाय करना आवश्यक है। वह उपाय है—सदाचरण और विश्वासयुक्त प्रार्थना।

सभी महानुभावोंने इस अनिष्टके नाश या कमीके लिये भगवदाराधन, देवोपासना आदिका उल्लेख किया है जो सर्वथा उचित, आवश्यक और कर्तव्य है। होता है सब प्रारब्धानुसार ही, परंतु विशेष अच्छा-बुरा प्रबल कर्म तुरंत नवीन प्रारब्ध बनकर भी नया फल दे सकता है। जैसे आजकल मनुष्योंकी घोर पाप-प्रवृत्ति कहीं-कहीं नवीन प्रारब्धका निर्माण करके उसका परम दुःखद, घोर फल भुगताती है, वैसे ही प्रबल शुभ-कर्म भी तुरंत नवीन प्रारब्ध बनकर फलदानोन्मुख प्रारब्धका अवरोध, उसका प्रायश्चित्त और नवीन शुभ-फलकी उत्पत्ति कर सकते हैं। ( यद्यपि सर्वज्ञ भगवान्की दृष्टिसे वह भी होता है भगवान्के मङ्गल विधानानुसार ही ) इसलिये निम्नलिखित कार्य व्यक्तिगत तथा सामूहिकरूपसे विश्वासपूर्वक यथासाध्य अधिक-से-अधिक सभी लोगोंको करने चाहिये—

( १ ) हिंदू ( सनातनी, आर्य-समाजी, जैन, बौद्ध, सिख एवं अन्यान्य समस्त हिंदू-धर्म-सम्प्रदाय ), मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी अपने-अपने धर्मानुसार निर्दोष भगवत्प्रार्थना, धर्मसेवन, पवित्र आचरण, संयम, सेवा आदि करें।

( २ ) वेदाध्ययन, वेदपारायण, विष्णु-रुद्रयाग, गायत्री-पुरश्चरण, महामृत्युञ्जय-जाप, पुराणपाठ आदिके आयोजन हों।

( ३ ) श्रीदुर्गादेवीके प्रसन्नार्थ शतचण्डी, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी आदिके अनुष्ठान हों, व्यक्तिगतरूपसे लोग अपनी-अपनी सुविधानुसार पाठ करें। इसमें निम्नलिखित सम्पुटोंमें कोई-सा सम्पुट लगाया जाय तो बहुत अच्छा है।

* उत्तर प्रदेश और बिहारमें गीताप्रेसके द्वारा भी यत्किंचित् सेवा-कार्य चल रहा है।

१. देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥
२. शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
३. करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥
४. विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥
५. सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

देवीजीके नवार्ण-मन्त्रके जाप अधिक-से-अधिक किये-कराये जायँ ।

( ४ ) श्रीमद्भागवतके सप्ताहपारायण अधिक-से-अधिक हों तथा नीचे लिखे सम्पुटसहित वाल्मीकिरामायणके नवाह्न और सुन्दरकाण्डके पाठ हों ।

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयोभूयो नमाम्यहम् ॥

( ५ ) श्रीमद्भगवद्गीताके तथा विष्णुसहस्रनामके अधिक-से-अधिक पाठ किये-कराये जायँ ।

( ६ ) श्रीरामचरितमानसके मासिक, नवाह्न या अखण्ड-पारायण यथासाध्य यथारुचि हों, निम्नलिखित सम्पुट दिये जायँ तो अच्छा है ।

१. राजिव नयन धरें धनुसायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥
२. जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
३. दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥
४. दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
५. गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥

( ७ ) भगवान् आशुतोष श्रीशंकरजीके निम्नलिखित मन्त्रोंका जाप अधिक-से-अधिक हो ।

**'ॐ नमः शिवाय'** ( यह प्रसिद्ध है ) ।

**'ॐ नमः शिवाय शुभं कुरु शुभं कुरु नमः शिवाय ॐ'** यह विष्णुप्रदत्त सिद्ध मन्त्र है । इसके अतिरिक्त, जगह-जगह रुद्राभिषेकसहित शिवपूजन किया जाय ।

( ८ ) भगवान्के नामके—अखण्ड या जिनको जैसी सुविधा हो, कीर्तनोंका खूब आयोजन किया जाय । मानसका पारायण तथा नाम-जप-कीर्तन तो गाँव-गाँव, घर-घर होना चाहिये ।

( ९ ) अकाल, बाढ़ तथा अन्यान्य दुर्घटनाओंसे ग्रस्त नर-नारियोंकी तन-मन-धनसे मुक्तहस्तसे सेवा की जाय । यह विपत्ति टालनेका सबसे प्रधान तथा निश्चित साधन है । जहाँ ऐसी दयनीय परिस्थिति है, वहाँ स्वयं भगवान् ही उन विपत्ति-ग्रस्त नर-नारियोंके रूपमें अपनी ही दी हुई चीजके द्वारा अपनी सेवा चाहते हैं । वहाँ भगवान्की वस्तु भगवान्की सेवामें अर्पण की जा रही है—इस भावसे उन विपद्ग्रस्त प्राणियोंकी खूब सेवा की-करायी जाय । यह समझा जाय कि हमारे पास धन, सम्पत्ति, बुद्धि, सामग्री—जो कुछ है, सब भगवान्की दी हुई, उन्हींकी वस्तु है । आज वे ही अपनी वस्तुसे अपनी सेवा चाह रहे हैं । और ऐसा समझकर प्राणिमात्रमें भगवान्को प्रकट देखकर सबकी यथासाध्य सेवा करना तथा सबके सुख एवं हितमें ही अपना सुख और हित समझना चाहिये । बड़े ही संतोषका विषय है कि इस समय देशभरमें कहीं अधिक, कहीं कम सामूहिक और व्यक्तिगत भगवदाराधना तथा देवोपसनाका कार्य चल रहा है । जगह-जगह यज्ञ, भागवत-पारायण, वाल्मीकि रामायण-पारायण, मानस-पारायण, नामसंकीर्तनके आयोजन हो रहे हैं । पिछले दिनों मिश्रिखमें, वृन्दावनमें बड़े आयोजन हुए थे । अब भागलपुरमें एक बड़ा यज्ञ होनेवाला है । अयोध्यामें भी आयोजन हो रहा है । दक्षिणमें, उत्तर भारतमें, बम्बई, कलकत्ता, राजस्थान और मध्य भारतमें कई जगह छोटे-बड़े आयोजन चल रहे हैं । यह बड़ा ही शुभ लक्षण है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

## जहाँ हम सीखने जाते हैं

जिस अमेरिकाको उन्नतिके शिखरपर चढ़ा हुआ समझकर हम अपने बालकोंको वहाँ शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भेजते हैं, वह अमेरिका धन तथा विज्ञानमें उन्नति करनेके साथ ही अपराध करनेमें भी किस तेजीसे आगे बढ़ रहा है, यह नीचेके आँकड़ोंसे देखिये। ये आँकड़े श्री जे० एडगर हूवर ( Mr. J. Edgar Hoover ) डाइरेक्टर आफ दि फेडरल ब्यूरो ऑव इन्वेस्टिगेशन, युनाइटेड स्टेट्स ( Director of the Federal Bureau of Investigation, U. S. ) के द्वारा प्रचारित किये गये हैं।

यह कहा गया है कि संयुक्त राज्य ( अमेरिका ) में गत वर्षके अपराधोंने पहलेका रेकार्ड तोड़ दिया है, जिसमें प्रति ५८ मिनटोंपर एक खून तथा प्रति ३४ मिनटोंपर एक बलात्कारका अपराध हुआ है।

भयानक अपराधों ( Serious Crimes ) की संख्या सन् १९५० से सन् १९६० में ( दस वर्षमें ) ९८ प्रतिशत बढ़ी है, जब कि इस अवधिमें जन-संख्यामें केवल १८ प्रतिशतकी वृद्धि हुई है। सन् १९६० में भयानक अपराधोंकी संख्या १८,६१,३०० है, जो १९५९ से १४ प्रतिशत अधिक है। इसमें प्रति ३९ सेकंडपर एक 'सेंध'का तथा प्रति दो मिनटपर एक 'मोटर चोरी'का अपराध हुआ है। 'खून'की संख्या गत वर्षसे ६ प्रतिशत और 'बलात्कार'की ३ प्रतिशत बढ़ी है। १८ वर्षसे कम उम्रके अपराध करनेवाले गिरफ्तार बच्चोंकी संख्या १९५० से ६ गुनी हो गयी है, जब कि उनकी जन-संख्या आधेसे भी कम बढ़ी है।

'संयुक्त राज्य पब्लिक हेल्थ सर्विस'के अनुसार ४२,९५००० जन्म लेनेवाले बच्चोंमें २,२१००० अवैध हैं।

६ करोड़ अस्सी लाख अमेरिकन व्यक्ति, जो २१ सालकी और उससे अधिक उम्रके हैं, मद्यपान करते हैं। सन् १९६० में अमेरिकाके लोगोंने एक बिलियन ( १० खरब ) क्वार्ट* विशुद्ध मद्यसारका सेवन किया और इसपर ८१० खरब डालर १ वर्षमें व्यय हुए।

आँकड़े स्वयं वस्तुस्थिति बतला रहे हैं †। हमने यदि अन्धानुकरण करके अमेरिकाके दोषोंको भी अपना लिया तो पता नहीं, क्या दुर्दशा होगी!

## सच्चा धनी और सच्चा दरिद्र कौन ?

सबसे अधिक मूल्यवान् धन तथा किसी भी मूल्यपर संग्रह एवं रक्षा करनेयोग्य वस्तु है—मनुष्यका आदर्शचरित्र—उसका सदाचरण। संसारके भोगोंकी दृष्टिसे—धन, वैभव, पद, अधिकार, मान और ख्याति आदिकी दृष्टिसे जो सर्वथा दरिद्र है, पर जो चरित्रवान् है—जिसके मनमें राग-द्वेषरहित सात्त्विकभाव, क्रियामें त्याग-प्रेमपूर्ण सद्भाव भरा है, वही सच्चा धनी है। पर जो सदाचारका दरिद्र है—जिसके मनमें गंदगी भरी है, जिसकी क्रिया दूषित है, वह आसुरी वृत्तिवाला धन, जन, वैभव, अधिकार, मान और बड़ाईसे सम्पन्न सम्राट् भी वस्तुतः दरिद्र है।

---

* एक क्वार्ट लगभग तीन पाव द्रवका होता है। इस हिसाबसे लगभग १८,७५०००००० ( अठारह अरब पचहत्तर करोड़ मन ) मद्य अमेरिकामें पीया जाता है।

† 'नार्दर्न इंडिया पत्रिका' २६। ७। ६१ और 'फिल्म इंडिया' सितम्बर ६१ के अङ्कोंसे।

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## पैसेकी कीमत मनुष्यकी स्थिति और उसके मनपर निर्भर रहती है

वर्षों पहलेका प्रसंग है। एक मारवाड़ी नवयुवक जीवन-निर्वाहके लिये कामकी खोजमें बम्बई आया था। पहननेके कपड़े तथा एक लोटेके सिवा उसके पास कोई सामान नहीं था। तीन दिन यों ही भटका और फुटपाथपर सोता रहा। अन्तमें किसी परिचितको उसपर दया आयी और उसने एक सार्वजनिक धर्मशालाके ट्रस्टीके नाम पत्र लिख दिया कि 'इस गरीब लड़केको वे कामपर लगा दें।'

धर्मशालाके ट्रस्टीने उससे कहा—'कल पहली तारीख है, अतः तुम कलसे कामपर लग जाना, अभी तो जाओ। तुम्हें धर्मशालाके पहरेदारका काम करना पड़ेगा। लड़का प्रसन्न हो गया और हाथ जोड़कर बोला—'सेठ साहेब! आपने मुझे अभी चले जानेके लिये कहा है, पर मैं कहाँ जाऊँ! आप आज्ञा दें तो मैं धर्मशालामें ही पड़ा रहूँ और कल सबेरेसे कामपर लग जाऊँ।'

सेठजीने बात मान ली। दूसरे दिन वह काममें लग गया। शामको सेठजी आये और उस नौजवानसे उन्होंने कहा—'तुम्हें क्या काम करना है, यह समझ लेना चाहिये। रोज कौन आते हैं और कौन जाते हैं—इसका ब्यौरा लिख रखना। किसीको बर्तन वगैरह कुछ दिया जाय तो उसको भी लिख लेना और धर्मशालाका ख्याल रखना।'

लड़केने कहा—'सेठजी! मैं धर्मशालाका ध्यान तो रखूँगा पर लिख नहीं सकूँगा।'

सेठजी बोले—'क्यों, दिमाग जरा खराब मालूम होता है।'

'नहीं सेठजी, लेकिन मुझे लिखना-पढ़ना नहीं आता।'

'ओह! ऐसी बात है। हमें तो ऐसा आदमी चाहिये जो पहरा भी दे और सब लिख भी सके। तुम इस कामके लायक नहीं हो, तुम्हें इसी समय छोड़ा जा रहा है। तुमने आज काम किया है, इसके बदलेमें ये आठ आने नौकरीके लो!'

लड़केका मुँह लटक गया। वह जैसे ही बाहर निकला कि सेठने वापस बुलाया। नौजवानके हृदयमें आशा जगी। उसने तुरंत लौटकर पूछा—'आप मुझे नौकरीपर रख रहे हैं न? मैं हृदयसे आपका आभार मानता हूँ।'

सेठने जेबसे पैसे निकाले और कहा—'लो, यह और आठ आना, यह मैं तुम्हें अपनी ओरसे दानमें दे रहा हूँ।'

यों एक रुपया लेकर लड़का चला गया। इस रुपयेसे उसने दस दिन काम चलाया। ग्यारहवें दिन जब फाका-कसीका अवसर आया, तब सट्टा बाजारमें एक सेठके यहाँ उसे कागज-पत्र पहुँचानेका काम मिल गया।

कुछ वर्षों बाद तो वह नौजवान बहुत बड़ा सटोरिया बन गया। बाजारमें उसका नाम गरजने लगा। विदेशोंमें भी नाम पहुँचा। वह बहुत बड़ा सफल व्यापारी बन गया।

एक बार किसी सार्वजनिक संस्थाके लिये एक नौजवान इनके पास आया और संस्थाका नाम बताकर सहायता चाही। इन्होंने तुरंत एक लाख रुपये दे दिये। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने जाकर अपने पितासे यह बात कही तब वे गद्गद कण्ठसे कहने लगे—'बेटा! ऐसे पुरुषका तो खूब सम्मान करना और इन्हें मानपत्र देना चाहिये। कल मैं तुम्हारे साथ चलकर सेठको समझाऊँगा।'

दूसरे दिन दोनों पिता-पुत्र सेठके पास गये। सेठ वृद्ध पुरुषकी ओर देखते रहे। वृद्धने कहा—'मैंने उम्र बड़ी होनेके कारण इस संस्थाके देख-रेखका काम छोड़ दिया है। अब मेरे पुत्रने इस कामको सँभाल लिया है। आपने एक लाख रुपये दिये, इससे मुझे बड़ा आनन्द मिला और मैं आपके दर्शन करने आ गया। हमलोगोंने आपको मानपत्र देनेका निश्चय किया है और आपको भी भाषण देना पड़ेगा। आप अपना भाषण लिख दें तो उसे पहलेसे छपवा लिया जाय। हम आपके भाषणको रेकार्डमें भी भर लेना चाहते हैं।'

सेठने कहा—'इतनी छोटी-सी रकमके लिये इतना सब करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मैंने तो कुछ किया ही नहीं है। अब आप स्वयं आये हैं तो मैं आपको ये एक लाख रुपये और देता हूँ। इन्हें आप अपने इच्छानुसार दानमें लगाइये।'

सेठने तुरंत ही तिजोरीमेंसे निकालकर एक लाखके नोट वृद्धके हाथोंपर रखते हुए कहा—'इसमें कोई उपकार

नहीं है, यह तो मैंने अपना हिसाब चुकता किया है। तो आप क्या कहना चाहते हैं ?' वृद्धने पूछा।

'मैं यह कहना चाहता हूँ कि बहुत वर्षों पहले जब मैं इस शहरमें आया था, तब, आप, जिस संस्थाकी बात कर रहे हैं उसमें मैंने एक दिन नौकरी की थी और उसके मेहनतानेके आपने आठ आने मुझको दिये थे। मुझे लिखना-पढ़ना नहीं आता था, इसलिये आपने मुझको नहीं रक्खा। उन आठ आनेके बदलेमें इस संस्थाको मैंने लाख रुपये दिये हैं। नौकरीसे अलग करनेके बाद आपके हृदयमें मेरे प्रति दया-भावका संचार हुआ और आपने मुझे वापस बुलाकर अपनी जेबसे आठ आने दानस्वरूप दिये थे। उसके बदले ये एक लाख रुपये मैं आपको दे रहा हूँ। संस्थाके संस्थाको दे दिये और आपके आपको।'

वृद्ध पुरुषकी आँखें छलक आयीं। उन्होंने कहा—'सेठ! आपने बहुत बड़ा बदला दिया।'

'यहाँ भी आप भूलते हैं। पैसेकी कितनी कीमत है, यह मनुष्यकी स्थिति और उसके मनपर निर्भर करती है। किसी एक गरीबके लिये आठ आने पैसे उसकी सर्वस्व-पूँजी बन जाते हैं और एक बड़े धनीके लिये लाख रुपये आठ आनेके बराबर होते हैं। आपकी और ईश्वरकी कृपासे मुझे धन मिला है इसलिये ये दो लाख रुपये देकर मैंने सिर्फ हिसाब ही चुकता किया है। आप भाषण देनेकी बात कहते हैं, सो मैं भाषण देना नहीं जानता। मैंने काम-चलाऊ लिखना-पढ़ना सीख लिया है। वैसे, मुझे कुछ नहीं आता।' सेठने कहा।

वृद्ध पुरुष बोले—'अच्छा तो आपके नामकी तख्ती लगा दी जाय ?' 'नहीं, ऐसा करनेकी जरूरत नहीं है। इससे मैं स्वयं मुश्किलमें पड़ जाऊँगा।'

'कैसे ?'

'इन्कम टैक्सके अधिकारी मुझे परेशान कर डालेंगे। मैं ब्रिटिश सरकारको टैक्स न देकर देशके काममें धन खरचता रहता हूँ।'

आप मानियेगा ?—इतनी बड़ी रकमकी सेठने रसीद भी नहीं लिखवायी। इस व्यापारी सेठका नाम था—श्रीगोविन्दराम सेकसरिया। बम्बई शहरमें यह नाम बहुत प्रसिद्ध है। खास करके सट्टे बाजारमें और उद्योग क्षेत्रमें। ('बीज')

( २ )

## सहानुभूति

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है—बम्बईमें रामदास नामक एक सज्जन नौकरीके पैसे लेकर घर लौट रहे थे। रामदास गृहस्थ थे। घरमें छः आदमी थे। वे एक व्यापारी फार्ममें ढाई सौ रुपये मासिककी नौकरी करते थे। कठिनतासे खर्च चलता था, महीनेकी अन्तिम तारीखको जब वेतनके पैसे मिलते, तब वे महीनेभरका अनाज, दूध, दवा, धोबी आदिका हिसाब चुकता करके आश्वासन प्राप्त करते। आज रुपये लेकर जा रहे थे—रास्तेमें उनके गाँवका एक परिचित आदमी मिला। रामदासने उसको उदास देखकर उदासीका कारण पूछा। वह रो पड़ा और बोला कि 'मेरी स्त्रीके पेटमें फोड़ा होकर अब सेप्टिक हो गया है। वह मरणासन्न है। डाक्टरने आपरेशनके लिये कहा है, उसमें ढाई सौ रुपयेका खर्च है और मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। स्त्री मर जायगी तो बच्चे अनाथ हो जायँगे। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।' रामदासने तुरंत जेबसे ढाई सौके नोट निकाले और उसके हाथपर रखते हुए कहा—'भाई! ले जाओ, तुरंत ऑपरेशनकी व्यवस्था करो।' वह आदमी रामदासकी स्थितिसे परिचित था। उसके न तो रामदाससे रुपये मिलनेकी कल्पना थी, न उसने उनसे माँगे ही थे। उसने लेनेसे इनकार कर दिया पर बड़ी विनय करके रामदासने उसको रुपये लेनेको बाध्य किया।

घर आकर पत्नीको सब बातें कहीं तो वह साध्वी बड़ी ही प्रसन्न हुई। उसने पतिके कार्यकी प्रशंसा करते हुए अपने गलेका हल्का-सा सोनेका हार उतारकर पतिको दिया कि जाकर इसे अभी बेंच आइये। किसीको पता न लगे कि ये अनाज-दूधके पैसे समयपर नहीं चुका सके। रामदास तो गद्गद थे।

—गोपाललाल गुप्त

( ३ )

## पुलिसकी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता

गत १४ मार्चकी घटना है। प्रभासपाटन (सोमनाथ) 'समाज-कल्याण-केन्द्र' के एकाउन्टेंट श्रीमंगलप्रसाद जूनागढ़ बैंक आफ सौराष्ट्रमेंसे साढ़े बारह हजार रुपये लेकर निकले। उनकी बेजानकारीमें नोटोंका बंडल नीचे गिर गया। उन्हें पता नहीं लगा। वे चले गये।

कुछ समय बाद मगनलाल होतचन्द ललवानी नामक पुलिसका एक सिपाही उधरसे निकला। उसको बंडल पड़ा दिखायी दिया। उसने उठाकर देखा तो उसमें साढ़े बारह हजार रुपयेके नोट थे। इतनी बड़ी रकम देखकर भी उसका मन नहीं चला और वह नोटोंके मालिकका पता लगाता हुआ बैंकमें पहुँचा।

उधर एकाउन्टेंट श्रीमंगलप्रसादको जब रुपये गिर जानेका पता लगा तो वे भी घबराये और नोटोंको खोजते हुए बैंकमें पहुँचे।

अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर लेने और यह जान लेनेपर कि ये रुपये इन्हीं सज्जनके हैं, गरीब पुलिसके सिपाहीने साढ़े बारह हजार रुपये उनको सँभला दिये। श्रीमंगलप्रसादको कितना सुख हुआ और उनसे भी अधिक कर्तव्यपरायण गरीब तथा ईमानदार सिपाहीने कितना आनन्द लाभ किया। इसको तो वे ही जानते हैं।

इस घटनाका पता जब जूनागढ़के डी० एस० पी० महोदयको लगा तो उन्हें अपने सिपाहीकी कर्तव्यपरायणता और ईमानदारीपर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने मगनलालको बुलाकर शाबाशीके साथ ही दो सौ रुपये इनाम दिये।

सिपाहीने कर्तव्यपालन ही किया, कोई खास महत्त्व नहीं। पर आजके बिगड़े युगमें, जहाँ पैसा ही परमेश्वर है—इतना लोभसंवरण बड़े ही महत्त्वकी बात है। हमारी पुलिसके सभी कर्मचारी ऐसे ही हों।

—मकनदास नरसीदास

( ४ )

## स्वप्नवत् संसार

सम्भवतः सन् १९३४ की बात है जब कि पूर्वी भारतके बिहार, बंगाल एवं आसाम प्रदेशोंपर भूकम्पका भयंकर प्रकोप हुआ था। इस विभीषिकासे सम्पूर्ण देश त्रस्त हो उठा था। समस्त समाचार-पत्र भूकम्पके प्रलयंकर समाचारोंसे भरे रहते थे।

उन दिनों काशीके एक मठमें संस्कृतका अध्ययन करनेवाले कुछ विद्यार्थी साधुओंने भी भूकम्पके समाचार पढ़े और पीड़ितोंके सहायतार्थ वे आसाम जा पहुँचे।

विनाशके इस भयानक वातावरणमें काशीके विद्यार्थियोंने एक ऐसे व्यक्तिको भी देखा जो अव्यवस्थित-सा दिखायी दे रहा था। विद्यार्थियोंने कहा—'सेठजी, ऐसा प्रतीत होता है कि आपके घरमें सभी प्रसन्न हैं, किसीका बाल भी बाँका नहीं हुआ है।'

सेठजी बोले—'आप जानना चाहते हैं तो सुनिये—आजसे तीस वर्ष पूर्व मैं राजपूतानेसे यहाँ आया था खाली हाथ। प्रारम्भमें कुछ वर्ष मैंने यहाँ नौकरी की, फिर साझेमें काम किया, बादमें अपना स्वतन्त्र व्यवसाय चालू किया, चार-पाँच लाख रुपया भी कमाया और मुझे लोग 'सेठजी, सेठजी' कहने लगे।

'इसी बीच मेरी शादी हुई, बाल-बच्चे हुए और ईश्वरकी कृपासे मुझे किसी भी पदार्थका अभाव नहीं रहा। परंतु लाखों रुपये कमाकर भी मेरे मनमें उनके प्रति कभी मोह उत्पन्न नहीं हुआ। स्त्री-पुत्र पाकर भी मैंने उनमें कभी ममता नहीं रक्खी। खजांचीकी तरह रुपयोंको पराया समझा और प्रभुके प्राणी समझकर स्त्री-बच्चोंका पालन किया।

'जब यह भूकम्प आया, उससे चार दिन पहले मैं दूसरे गाँव गया हुआ था। वापिस आया तो देखा कि अपना मकान पहिचानना भी कठिन हो रहा है। मकान तो अब है ही कहाँ, धूलका ढेरमात्र है। और अनुमान यह है कि स्त्री-बच्चे मलबेके नीचे दबकर मर गये। पर यह अनुमान कोरा अनुमानमात्र नहीं, अक्षरशः सत्य है। स्त्री-बच्चे जीवित होते तो वे आज हमारे बीच होते; और इतने मलबेको हटाकर उनकी लाशें प्राप्त करना भी असम्भव-सा ही प्रतीत होता है।'

यह सुनकर साधु विद्यार्थियोंकी आँखें गीली हो गयीं। 'रोनेकी क्या बात है,' सेठजीने कहा। 'एक धोती और एक लोटा आज भी मेरे पास है और इन्हें लेकर मैं गाँव लौट रहा हूँ। जब सारा संसार ही स्वप्नवत् है तो इसमें चिन्ताकी क्या बात है!'

यह सुनकर साधुओंने मन-ही-मन सेठजीको श्रद्धाके सुमन चढ़ाये। जब सेठजी चले गये, तब साधु आपसमें बात करने लगे—'ऐसा गृहस्थ तो साधुओंके लिये भी आदर्श है।'

वास्तवमें इष्ट-वियोग और अनिष्ट-योगके कारण दुःखानुभूति होती है, परंतु यदि हम सांसारिक पदार्थोंके साथ अपनत्वका नाता जोड़ें ही नहीं तो इष्ट-वियोग और अनिष्ट-योग भी हमको विचलित नहीं कर सकेंगे। माना कि ऐसा करना कठिन है, किंतु असाध्य नहीं है।

—श्रीलाल नथमल जोशी

( ५ )

## सुन्दरकाण्डका अद्भुत चमत्कार

यदि किसी भी वस्तुमें विश्वास किया जाय तो उसका उत्तम फल प्रत्यक्ष ही प्राप्त होता है, इसकी पुष्टि हालमें ही घटित एक घटनासे हुई है। स्थानीय केन्द्र पंचायत, शाजापुरके मन्त्री श्रीहरविलास बंसलके बारहवर्षीय पुत्र राधेश्यामके एक सायकल-सवारकी असावधानीसे हाथकी हड्डी टूट गयी, तुरंत ही चिकित्सालयमें नये सर्जन साहबद्वारा उसका एक्सरे लिया जाकर प्लास्टरका पट्टा चढ़ा दिया गया। लोगोंके तथा पुलिसके बार-बार कहनेके बावजूद भी श्रीबंसलने थानेपर सायकल-सवारके नामकी रिपोर्ट दर्ज करानेसे इन्कार कर दिया।

किंतु जब बालकके हाथका दर्द बढ़नेसे वह रोने-चिल्लाने लगा, तब श्रीबंसलने, जो अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति हैं, तुरंत ही रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। आप मानें या न मानें, कुछ ही मिनटोंमें बालकका दर्द काफूर हो गया और वह हँसता-खेलता नज़र आया। यह विश्वासका ही अद्भुत चमत्कार था। नगरमें इस घटनासे बड़ा आश्चर्य है। —बी० एल० शर्मा, शाजापुर

( ६ )

## हड्डी और मांसके नासूरकी अनुभूत दवा

शरीरके किसी हिस्सेमें पुराना घाव हो जानेपर उसकी हालत खराब हो जाती है, नासूर बन जाता है। उसके सेप्टिक हो जानेका डर रहता है। ऐसी अवस्थामें उस हिस्सेको काटकर निकाल देनेके सिवा और इलाज प्रायः नहीं बताया जाता। ऐसे ही नासूरकी यह अचूक दवा है—

गायका मक्खन (दहीको मथकर निकाला हुआ) एक छटाँक किसी काँसीकी बड़ी थालीमें रखकर उसे स्वच्छ पानीसे १०८ बार खूब धो लीजिये। ( यह मक्खन विषवत् हो जाता है, इसे खाना नहीं चाहिये। ) इसमें एक तोला काला सुरमा और एक तोला सफेद सुरमा अच्छी तरह खूब महीन पीसकर मिला दीजिये। बस, दवा तैयार है। इस मरहमको थालीके एक किनारे इकट्ठा करके उस किनारेके नीचे कोई चीज रखकर उसे ऊँचा कर दीजिये। दो-तीन घंटेमें सारा पानी बूँद-बूँद करके निकल जायगा।

फिर, नीमके पत्ते उबालकर उस पानीसे घावको धो लें। तदनन्तर फलालेन या किसी मुलायम कपड़ेको नासूरके बराबर काटकर उसपर मरहम लगाकर नासूरपर रख दें। उसपर रूई रखकर प्लास्टिककी पट्टीसे उसे चिपका दें। नासूरको सिर्फ शुरूमें एक बार धोना है। फिर प्रतिदिन एक बार मरहम लगाकर पट्टी बदल देनी है। १५-२० दिनोंमें नासूर ठीक हो जायगा।

—हरिश्चन्द्र अग्रवाल, पो० कैमरी ( हिसार )

## नित्य परम आनन्द छा गया

रहूँ कहीं, कैसे भी, रहते नित्य साथ मेरे भगवान।
जाऊँ कहीं, वहीं दिखती मुझको उनकी मधु मूर्ति महान॥
बसे सदा मेरे अंदर, वे बाहर भी नित रहते पास।
ममता-मोह मरे सब जगके, प्रभुमें हुआ पूर्ण विश्वास॥
पाप-ताप भय-शोक मिटे सब, नष्ट हो गया मोह समूल।
मिटे मोहके कार्य भयानक सभी जातिके सारे शूल॥
मधुर-भयानक जगका कुछ भी, कैसा भी परिवर्तन आज।
दिखता मुझे मधुर लीलामय प्रभुका ही सब लीला-साज॥
प्रभुके दर्शन-स्पर्श-मिलनसे नित्य, मिटे जगके सब द्वन्द्व।
परम शान्तिसे पूर्ण विलक्षण छाया नित्य परम आनन्द॥

**भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव, भगवती लक्ष्मी, श्रीदुर्गा आदिके भव्य दर्शन**

# गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर-सुन्दर चित्रावलियाँ

**१५×२० आकारके बढ़िया आर्टपेपरपर छपी बड़ी चित्रावलियाँ नं० १-२-३ तथा ४, प्रत्येकमें २ सुनहरे तथा ८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। मुखपृष्ठ मोटे कागजपर छपा है। दाम प्रत्येकका रु० २.७५, पैकिंग-डाकखर्च प्रत्येकका १.०६।**

इस आकारकी चित्रावलियाँ नं० १-२ तथा ३ तो पहलेसे ही प्रचलित हैं, पर **चित्रावलि नं० ४** नयी छपी है। इसमें कई चित्र तो सर्वथा नये हैं। नं० ४ के चित्रोंके नाम, **सुनहरी**—( १ ) भगवान् श्रीरामचन्द्र, ( २ ) जगज्जननी माता जानकी। **बहुरंगे** ( १ )—सच्चिदानन्दके ज्योतिषी, ( २ ) मनमोहन श्रीकृष्ण, ( ३ ) मुरलीका असर, ( ४ ) श्रीकृष्ण-यशोदा, ( ५ ) भगवान् विष्णु, ( ६ ) लक्ष्मी माता, ( ७ ) शिव-परिवार तथा ( ८ ) भगवान् बुद्ध। दाम २.७५, डाकखर्च १.०६।

**मझले—आकार ११×१४॥ में चित्रावलि नं० १, दाम २.००, डाकखर्च .८७, कुल २.८७।**

यह भी नयी निकली है। इसमें १२ चित्र हैं। सभी बहुरंगे हैं। नाम—( १ ) श्रीरामकी झाँकी, ( २ ) दशरथ-के भाग्य, ( ३ ) चित्रकूटमें, ( ४ ) श्रीराम-जटायु, ( ५ ) हनुमान्‌जीकी प्रार्थना, ( ६ ) कालियनागपर कृपा, ( ७ ) महारास, ( ८ ) परमधाम-गमनके पूर्वकी झाँकी, ( ९ ) मार्कण्डेय मुनिपर भगवान शंकरकी कृपा, ( १० ) भगवान् नृसिंहजी, ( ११ ) शेषशायी और ( १२ ) ध्रुवपर अनुग्रह।

उपर्युक्त पाँचों चित्रावलियाँ एक साथ लेनेपर कमीशन काटकर दाम १२.१९, पैकिंग-डाकखर्च २.२१, कुल १४.४०

**१०×७॥ आकारकी चित्रावलियाँ नं० १-२ तथा ३ पहलेसे ही प्रचलित हैं। प्रत्येकमें २ सुनहरे तथा १८ बहुरंगे चित्र हैं। दाम प्रत्येकका १.३१, पैकिंग-डाकखर्च .९४, कुल २.२५ है। तीनोंका एक साथ मूल्य ३.९३, डाकखर्च १.१९, कुल ५.१२।**

*नयी पुस्तक !* *प्रकाशित हो गयी !!*

# प्रेमयोगका तत्त्व

लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

**आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३८०, पाँच तिरंगे तथा एक सादा, कुल छः सुन्दर चित्र, मूल्य १.००, डाकखर्च ९४ कुल १.९४**

जबसे श्रीगोयन्दकाजीके ज्ञानयोगसम्बन्धी लेखोंका संग्रह 'ज्ञानयोगका तत्त्व' प्रकाशित हुआ, तभीसे लोगोंका यह आग्रह था कि उनके प्रेमसम्बन्धी लेखोंका भी एक अलग संग्रह प्रकाशित किया जाय, जिससे प्रेमपथके पथिकोंको एकत्र ही प्रेमसम्बन्धी पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सके। प्रस्तुत पुस्तकमें प्रेम-सम्बन्धी २२ लेखोंका संग्रह है। ये सभी लेख 'कल्याण' तथा 'तत्त्वचिन्तामणि' आदि पुस्तकोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। प्रेम प्राप्त करनेके इच्छुक साधक इन लेखोंको पढ़कर और मनन करके तदनुसार अपने जीवनको विशुद्ध भगवत्प्रेममय बनानेका प्रयत्न कर सकते हैं।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

रजि० सं० ए० १७५

## 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंकी सेवामें प्रार्थना

( १ ) यह 'कल्याण'के ३५ वें वर्षका ११ वाँ अङ्क है। एक अङ्क और प्रकाशित हो जानेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ३६ वें वर्षका पहला विशेषाङ्क 'संक्षिप्त-शिवमहापुराणाङ्क' होगा। यह सूचना दी जा चुकी है। संक्षिप्त-शिवमहापुराणाङ्क छप रहा है। इसमें भगवान् शिवके विचित्र तथा विलक्षण चरित्र-लीला-सम्बन्धी प्रसङ्गोंके अतिरिक्त वेदान्त, भक्ति-कर्मयोग, अनुष्ठान तथा पूजा-विधान आदि अनेक सर्वोपयोगी अत्यन्त उपादेय विषय रहेंगे, चित्र भी बहुत सुन्दर होंगे।

( २ ) इस बहुमूल्य विशेषाङ्कका मूल्य ७.५० ही रहेगा। पृष्ठ-संख्या भी पूर्ववत् लगभग ७०० होगी। अतएव पुराने ग्राहकोंको तुरंत मनीआर्डरद्वारा ७.५० ( सात रुपये पचास नये पैसे ) भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये। मनीआर्डर फार्म गताङ्कमें भेजा जा चुका है। नये ग्राहकोंको भी शीघ्र रुपये भेजकर अपना नाम लिखवा लेना चाहिये। शिवपुराणको लोग बहुत अधिक चाहते हैं, अतएव यह अङ्क शीघ्र ही समाप्त हो जायगा, ऐसा लगता है।

( ३ ) रुपये भेजते समय मनीआर्डरके कूपनमें पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनेकी कृपा करें और नाम, पता, मुहल्लेका नाम, ग्राम, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि बड़े-बड़े साफ अक्षरोंमें लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा अवश्य करें। रुपये मनीआर्डरद्वारा भेजने-भिजवानेमें जल्दी करनी चाहिये। केवल विशेषाङ्कका मूल्य भी ७.५० है। इसलिये वर्षभरका ग्राहक बननेमें ही लाभ है।

( ४ ) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना अवश्य दे दें, जिससे व्यर्थ वी० पी० भेजनेमें समय तथा डाकखर्चेका अपव्यय न हो।

( ५ ) गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' विभाग कल्याण-विभागसे पृथक् हैं। अतः पुस्तकोंके तथा कल्पतरुके लिये उन-उनके व्यवस्थापकके नाम ही अलग-अलग आदेश तथा रुपये भेजें।

( ६ ) सजिल्द अङ्कका मूल्य १.२५ ( एक रुपया पचीस नये पैसे ) अधिक है। परंतु इस वर्ष जिल्दकी सुविधा बहुत कम है। सजिल्द अङ्क बने भी तो उनमें बहुत देर होना सम्भव है।

( ७ ) इस अङ्कमें लेख प्रायः नहीं जायँगे। अतएव कोई महानुभाव लेख या कविता कृपया न भेजें।

( ८ ) सभी कृपालु ग्राहक-अनुग्राहक तथा प्रेमी पाठक-पाठिकागण कम-से-कम दो-दो नये ग्राहक बनाकर देशमें सद्भावोंका प्रसार करनेमें सहायक बनें। यह विनीत निवेदन है।

( ९ ) आशा तो है कि विशेषाङ्क जनवरीके प्रथम सप्ताहमें ही ग्राहकोंके पास भेजा जाना आरम्भ हो जायगा। दैवी विधानकी बात दूसरी है।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )